International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology (IJIRSET)

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2320-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 7.512|

||Volume 9, Issue 6, June 2020||

आधुनिक महिला उपन्यासों में नारी चेतना के विविध आयाम

डॉ. प्रेमलता सैनी

सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग, अग्रवाल पी. जी. महाविद्यालय जयपुर

सार

आदिवासी विमर्श, दलित विमर्श और नारी विमर्श ने साहित्य को समझने की केवल नई दृष्टि प्रदान नहीं की, बल्कि उसमें नये जीवन आदर्श भी प्रतिस्थापित किए। नारी विमर्श एक ऐसा विमर्श है, जिसने पूरे विश्व में हड़कम्प मचा दिया है। नारी विमर्श नारी की मुक्ति से संबद्ध एक विचारधारा है और नारी चूंकि समाज की धुरी के रूप में समाज की देखभाल सदियां से करती आ रही है, भारत में नारी को देवी, श्रद्धा, अबला जैसे संबोधनों से संबोधित करने की परंपरा बहुत पुराने समय से चली आ रही है। इस तरह के संबोधन अथवा विशेषण जोड़कर हमने उसे एक ओर पूजा की वस्तु बना दिया है तो दूसरी ओर अबला के रुप में उसे भोग्या एवं चल-संपत्ति बना दिया। हम यह भूल जाते हैं कि नारी मातृ – सत्ता का नाम है, जो हमें जन्म देती है, पालती है तथा योग्य बनाती है। यह कार्य नारी का मातृरूप ही करता है। आज विश्व के हर कोने में नारी के सुदृढ़ पगों की चाप सुनाई दे रही है। आज जीवन के सभी क्षेत्रों में नारी ने अपना स्थान बनाया है। शिक्षा के क्षेत्र में सभी परीक्षाओं में लड़कियाँ अधिक आगे रहती हैं। आज आई.ए.एस., आई.आई.टी., चिकित्सा, प्रबंधन सभी क्षेत्रों में नारी पुरुषों से आगे हैं। नारी का नौकरी में होना आज एक आम बात है। पचास वर्ष पहले यह एक बड़ी घटना थी। शताब्दियों से पुरुष ही घर के भरण- पोषण का दायित्व संभालता रहा है। नारी को केवल यही सिखाया गया कि तुम अच्छी माँ बनो, अच्छी बहन और अच्छी पत्नी बनो। इसी में तुम्हारा जीवन सार्थक है। बाहर के जीवन से तुम्हें कुछ लेना-देना नहीं, इसीलिए शिक्षा से भी तुम्हारा कोई वास्ता नहीं। यदि समाज को सुव्यवस्थित, सुगठित बनाना है और शांति पाना है तो नारी को समुचित सम्मानीय स्थान देना होगा, उसे मर्यादित करने के लिए प्रेम देना होगा और उसे स्वावलम्बी बनाने के लिए पूर्णतः शिक्षित करना होगा। हर कन्या का पुत्र की भांति पालन-पोषण करना होगा। इसलिए हमारे समाज की भी जिम्मेदारी बनती है कि हम लड़कियों को इस तरह शिक्षित करें कि वक्त आने पर वह रणचंडी बन दहेज के दानवों को उनके बुरे अंजाम तक पहुँचाएं और दूसरी जिम्मेदारी स्वयं नारी की है, जो हिम्मत से आसमान की बुलंदी को छुए जहाँ ये पंक्तियां साकार हो उठें-

"खुदी को कर बुलंद इतना
हर तदबीर से पहले
खुदा बंदे से खुद पूछे,
बता तेरी रजा क्या है?"

और यह भी हर पल याद रखें कि हिम्मत रखने वालों की मदद स्वयं परमेश्वर करता है-

"फानूस बनके जिसकी
हिफाजत हवा करे,
वह समा क्या बुझे
जिसे रोशन खुदा करे"

परिचय

जहाँ तक योग्यता का प्रश्न है, नारी ने कर्म के सभी क्षेत्रों में नाम अर्जित किया है। नारी के नौकरी में आने से अनेक लाभ हुए हैं। सबसे पहला लाभ, नारी का सम्मान बढ़ गया है। उसको एक स्वतंत्र व्यक्तित्व मिला है। अब परिवार को चलाने में वह बराबर की सहयोगिनी होती है।[1] अब उसकी पहचान पत्नी के रूप में नहीं, बल्कि जीवन संगिनी के रूप में विकसित होने लगी है। नारी और पुरुष दोनों समाज रूपी रथ के दो पहिए हैं। दोनों का समान रूप से शिक्षित होना आवश्यक है। स्त्री को अशिक्षित रखकर कोई समाज अपने कल्याण की बात नहीं सोच सकता। प्रसिद्ध दार्शनिक बर्नार्ड शॉ का कहना है-"देखकर साफ बताया जा सकता है।

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2320-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 7.512|

||Volume 9, Issue 6, June 2020||

सुशिक्षित नारी समाज में फैले दुराचार, रुढ़िवाद और अनाचार को नष्ट करने में सहायक हो सकती है।''1 हिन्दी साहित्य में नारी चेतना का प्रभाव अधिकांशतः साहित्य सर्जन के क्षेत्र में ही दिखलाई पड़ा। स्वाधीन भारत में नारी शिक्षा के व्यापक प्रचार-प्रसार ने नारी चेतना को आन्दोलन बनाने में अपनी भूमिका अदा की है। इस बीच साहित्य में नारी लेखकों की अपेक्षित संख्या सामने आई है। उनमें अपनी बात को साहस पूर्वक खुलकर कहने का भाव भी है और वे घरेलू जीवन के साथ-साथ अपने व्यक्तिगत जीवन को ज्यादा खुलकर प्रस्तुत करने लगी हैं।

आज की नारी स्वच्छन्द, स्वाभिमानी बन गयी है। बच्चे के लालन-पालन की जिम्मेदारी केवल नारी की ही समझी जाती है। लेकिन, वर्तमान समय में माता-पिता दोनों की नैतिक जिम्मेदारी बन गयी है। किसी भी मानसिकता का तीसरा आयाम शिक्षा ही है, जिससे स्त्री ने आज आसमान छू लिया है। स्त्री को स्त्री बनाने में पुरुषवादी मानसिकता का बड़ा योगदान है। आज अशिक्षित और शिक्षित नारियाँ-दोनों ही घर-बाहर अपनी दोहरी मूक भूमिका निभा रही हैं। अनपढ़ को घर के पिसने का मलाल भी नहीं क्योंकि ये औरतें घर के चूल्हों को जलाने के लिए घर से निकलती हैं। लेकिन, पढ़ी-लिखी औरतें आत्मनिर्भरता एवं आत्म सम्मान पाने की आकांक्षा से ही नौकरी करती हैं। ऐसे में इन आत्मनिर्भर और कामकाजी औरतों को 'घर-बाहर दोनों जगह पिस रही रही हैं' जैसी हतोत्साहित करने वाली उक्तियों से बचना होगा। परम्परा से चले आ रहे तीज-त्योहारों एवं शादी-विवाह पर लड़की को अपरिवर्तनीय समझी जाने वाली लेन-देन की कुप्रथाओं को चुनौती देने के लिए आगे आना होगा और अपने प्रति चलने वाली दोगली मानसिकता को बदलना होगा।

यदि हिन्दी साहित्य की बात करें तो मृदुला गर्ग का कथा-साहित्य भारतीय यौनाचार का भारतीय अभिलेख है। ऐसा लगता है कि पश्चिमी स्त्रीवादी चेतना से उन्होंने मुक्त यौन-विहार को चुन लिया है और उसे स्त्री मुक्ति का मुद्दा बनाया है। अन्य महिला स्त्री विमर्शकारों में शिवानी, ममता कालिया, सूर्यबाला, नमिता सिंह, सुनीता जैन, मृणाल पाण्डे, नासिरा शर्मा, मंजुल भगत, शशिप्रभा शास्त्री, चन्द्रकिरण आदि उल्लेख्य हैं। 'मन्नू भण्डारी' का 'आपका बन्टी' शरद् चन्द्र की भावुकता पैदा नहीं करता, बल्कि पाठक को संवेदना के स्तर पर विक्षुब्ध करता है, [2,3]मध्य वर्गीय अंहग्रस्त समाज की दुखती रग पर अंगुली रख देता है। पढ़े-लिखे समाज में पति-पत्नी के अपने-अपने अहम् की टकराहट स्वाभाविक है। इस टकराहट का फल है- शकुन और अजय का तलाक। इन दोनों के बीच उनका बेटा बंटी बुरी तरह से पिसता है। पिसते-पिसते वह पहचान से परे होता जाता है। सारा उपन्यास तनावों से भरा हुआ है। यह तनाव अजय में कम है, शकुन में ज्यादा। पश्चिमी माँ का ममत्व चाहे मर गया हो, किन्तु भारतीय नारी का ममत्व अभी जीवित है, जिसे पाश्चात्य आधुनिकता धीरे-धीरे मार रही है। वास्तव में यह उपन्यास परिवार और स्त्री की जटिल समस्या का उपन्यास है, जो समाधान नहीं, प्रश्न उठाता है-प्रश्न भी कई स्तरों पर। वह नारीपन से मुक्ति का नारा लगाती है, वह लिखती हैं कि स्त्री पैदा नहीं होती, बनाई जाती है अर्थात् स्त्री को बचपन से ही मानसिक तौर पर उसके नारी होने की भावना के लिए तैयार किया जाता है। ''औरत जन्म से ही औरत नहीं होती, बल्कि बढ़कर औरत बनती है, कोई भी जैविक, मनोवैज्ञानिक या आर्थिक नियति आधुनिक स्त्री के भाग्य की अकेली नियन्ता नहीं होती। पूरी सभ्यता ही इस अजीबो-गरीब जीवन का निर्माण करती है।''2

'स्त्री-विमर्श' के अन्तर्गत कुछ कथाकारों ने ऐसी नारियों का चित्रण भी किया है, जो आर्थिक रूप से स्वतंत्र एवं स्वावलम्बी होकर विवाह संस्था का निषेध करती हैं और पुरुष के साथ 'कम्पेनियन' बनकर रहना चाहती हैं, पत्नी बनकर नहीं। स्त्री को सदियों से चार दीवारों, चूल्हा-चक्की, घर-परिवार तथा बच्चों को संभालना..... तक सीमित रखा गया था। जब-जब उसने चौखट लांघने की कोशिश की, या पुरुष के अन्याय के विरुद्ध आवाज उठायी, तब-तब उसे प्रेम से या क्रोध से पुनः अँधेरी खोह में धकेल दिया गया। कभी उसे देवी बनाकर उसके पैरों को जकड़ा गया तो कभी उसके शरीर को आघात पहुँचाकर अनंत काल तक सहन करने के लिए छोड़ दिया गया था। [4,5]निर्मला पुतुल की कविताओं में अभिव्यक्त आदिवासी स्त्री भी ऐसे ही दर्द को सहते हुए नजर आती हैः-

''अब औरत किसी आदमी के नाम से जुड़ी जमीन नहीं,
उसकी जिंदगी सिर्फ उसकी है, यही उसके जीवन का मूलमंत्र है
हथियार के बल पर और कब तक होगी सभ्यता की खरीद बिक्री,
असमानता की जटा उधेड़कर नारी खोज रही है समता का सूत,
अब वह समझ गयी है कि उसका जीवन सिर्फ उसी का है, उसी के लिए है।''3

आज की नारी स्वच्छंद, आत्मस्वाभिमानी बन गयी है। आज स्त्रियाँ पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर हरेक क्षेत्र में सहायता कर रही हैं। जिनमें उनके प्रवेश की कल्पना पुरुषों ने नहीं की थी। महादेवी वर्मा ने 'श्रृंखला की कड़ियाँ' में शिक्षा के प्रसार और आर्थिक आत्मनिर्भरता के कारण स्त्रियों में नई जागृति उत्पन्न हुई। आगे चलकर स्त्री लेखिकाओं ने इन कड़ियों को तोड़ना शुरु किया, किसी ने झटके से और किसी ने धीरे-धीरे। सुमन राजे कहती हैं-

''क्या तुम जानते हो, अपनी कल्पना में, किस तरह एक ही समय में
स्वयं को स्थापित और निर्वासित, करती है एक स्त्री?''4

आज महिलाओं को आरक्षण तो प्राप्त हो गया है। वह गाँव की मुखिया, सरपंच और ग्राम्याध्यक्ष भी बन गई हैं, परन्तु वास्तव में, उसके हाथ में सत्ता-अधिकार आए हैं क्या? पुरुष के वर्चस्व, उसकी दंभी वृत्ति और उसकी शरीर की ताकत से क्या वह मुकाबला कर पा रही है? आज समाज को ऐसी नारियों की आवश्यकता है, जो अपनी अन्तः शक्ति का प्रयोग पुरुष को पुरुषोत्तम बनाने के लिए करें, न कि पाश्चात्य संस्कृति का अन्धानुकरण करती हुई परिवार की उपेक्षा करें। आधुनिक शिक्षित युवक-युवतियाँ शिक्षा समाप्त होने के पश्चात् नौकरी करना चाहते हैं। उनका उद्देश्य स्वयं को स्थापित करना होता है। अपनी दक्षता के आधार पर आत्मनिर्भर होने की प्रबल चेष्टा लिए हुए इस पीढ़ी की नारी हर हाल में संघर्ष के हर पहलू से लड़ लेती है और बड़ी समझदारी के साथ अपने हिस्से मिले हुए दुःख-दर्द को अपने अनुसार सुलझाना भी जानती है। इसके साथ ही साथ, उनको ऐसा जीवन साथी चाहिए, जो उनकी भावनाओं को समझे और उनके व्यक्तित्व का सम्मान भी करे।[6,7]

अन्ततः हम कह सकते हैं कि समाज के उज्जवल भविष्य की कामना के लिए हमें औरत के प्रति अपना नजरिया व व्यापार सब बदलने होंगे। उसे भी मान-सम्मन, स्नेह, अपनेपन की आवश्यकता है, वह समाज का अभिन्न हिस्सा है। उसमें भी अपार सामर्थ्य व संभावनाएँ हैं, जिससे समाज का विकास ही होगा। हमें सकारात्मक सोच को अपनाते हुए उसके अस्तित्व को स्वीकारना होगा। आज का युग बेसक नारी स्वतन्त्रता का युग है। लेकिन, हम कटु सत्यों को भी नकार नहीं सकते। इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि नारी के परम्परागत स्वरूप में कोई परिवर्तन नहीं आया। इन सब रुढ़ियों और कुप्रथाओं के बावजूद वह सभी चुनौतियों का सामना करते हुए विभिन्न क्षेत्रों में अपनी श्रेष्ठता प्रतिपादित कर रही है। आज महिलाएँ मानवीय क्रियाकलापों के सभी क्षेत्रों में नई-नई उपलब्धियाँ अर्जित कर रही हैं। भारत में पहली महिला राष्ट्रपति प्रतिभा पाटिल, लोकसभा की पहली महिला स्पीकर मीरा कुमारी, अंतरिक्ष तक पहुंचने वाली कल्पना चावला इत्यादि उदाहरण यह दर्शाते हैं कि महिलाओं को न कवेल अपनी ताकत का अहसास हो गया, बल्कि समाज के अन्य वर्ग भी इस ताकत का लोहा मानने लगे हैं। शिक्षा के कारण नारी में जागरुकता आई है और अनेक क्षेत्रों में उसका सम्मान बढ़ा है। आज भारत में नारी-शिक्षा की स्थिति संतोषजनक नहीं है, किन्तु आशाजनक अवश्य है। सरकार और समाज के प्रयत्नों से नारी-शिक्षा का अधिकाधिक विकास करके उसकी क्षमताओं को विकसित किया जाए तो आशातीत सफलता मिल सकती है।[8,9]

विचार-विमर्श

इस आलेख में अनेक दृष्टियों से अज्ञेय कथा साहित्य में नारी चेतना पर विचार किया गया है। साथ ही अज्ञेय के नारी संबंधी दृष्टिकोण को उसके सम्पूर्ण परिवेश में देखने एवं उसका विश्लेषण, तथ्यों के आधार पर विवेचनापूर्ण ढंग से किया गया है। हिन्दी वाङ्मय में छायावाद शब्दांडबर एवं प्रगतिवाद की सतही समाजिकता के प्रतिक्रियास्वरूप नवीन अभिव्यक्ति, माध्यम व विषयों हेतु प्रयोगवाद का उदय हुआ। प्रयोगवाद के प्रवर्तक सच्चिदानंद हीरानन्द वात्स्यायन मूलतः तीव्र भावावेगों के व्यक्ति थे। देश और समाज की पीडा तथा प्रत्यासन्न समस्याओं और चुनौतियों की जैसी पकड उनमें थी वैसी कम ही लेखकों में होगी। हिन्दी कथा साहित्य को नयी दिशा देने में अज्ञेय अग्रणी रहे हैं। अज्ञेय की कथा-कृतियों-उपन्यास व कहानियों में न तो कहीं गूढ दार्शनिकता की अभिव्यक्ति है और न मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के प्रति दुराग्रह ही। वे अपने संपूर्ण कथा सृजन के संदर्भ में सर्वथा एवं सर्वदा मौलिक है। 'शेखरः एक जीवनी' का यथार्थ चित्रण, 'नदी के द्वीप' की भाव-सबलता 'अपने-अपने अजनबी' का अर्थ गाम्भीर्य, 'अमरवल्लरी', 'रोज', 'शत्रु', 'कडियाँ', 'विपथगा', 'जयदोल', 'पगोडा वृक्ष' आदि कहानियों की भाव एवं शिल्पगत उत्कृष्टता आदि कतिपय ऐसी विशिष्टताएं हैं जो अज्ञेय को अन्य समवर्ती कथाकारों से विशिष्ट एवं उच्चतर स्थान प्रदान करती है।[10,11] अज्ञेय कथा-साहित्य में नारी के स्वरूप को चित्रित करने से पूर्व पृष्ठभूमि के रूप में आधुनिक हिन्दी साहित्य में नारी की स्थिति को देखने का प्रयास किया गया है। आधुनिक हिन्दी साहित्य को उत्थान काल, जागृति काल, विकास काल व नव्य काल में विभाजित किया गया है। जो क्रमशः भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग, छायावादी युग व छायावादोत्तर युग की प्रवृत्तियों के द्योतक हैं। उत्थान काल में नारी को मध्य युगीन श्ाृंगारिकता एवं नवयुगीन सुधार भावना के संधि स्थल पर खडी हो, अरुणोदय की ओर लालायित दृष्टि किए देखा जा सकता है। जागृति काल में सुधार भावना को बल प्राप्त हुआ। उसको रीति युग के विपरीत पुरुष की भोग्या न बनकर उसकी प्रेरणा व शक्ति बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उसे सामाजिक आदर्शों की उच्चतर मनोभूमि पर अधिष्ठित किया गया। विकास काल की नारी में शिक्षिता होने का दंभ है। आत्म सम्मान, सामाजिक प्रतिष्ठा व अपने अधिकारों के लिए वह पुरुष से संघर्ष करना चाहती है। आत्म निर्भर जीवन अवस्था में उसकी आस्था है। परन्तु साथ ही पुरुष से स्वतंत्र हो उसकी आत्मा को शांति नहीं मिलती। अपनी अपरिपक्व, विक्षिप्त विचारधाराओं में वह स्वयं ही उलझ गई है। इस नवउदारवादी समय में धीरे-धीरे नारी अपनी जमीन को मजबूत करती जा रही है। वह अब संभलने लगी है। वह जागरूक हो अपने अधिकारों की मांग कर रही है। पर यहां प्रश्ा* उठता है मांग क्यों? क्यों वह अपने को गुलाम मानती है? वह सहधर्मिकी है तो उसे अपनी इच्छाएं मांग स्वयं से ही पूरी कर लेनी चाहिए। वह करती भी है लेकिन कई बार वह नैतिकता, शरीर की सीमाओं का अतिक्रमण कर जाती है। अज्ञेय कथा साहित्य की नारी एक ओर पुरुष पर न्यौछावर होने में ही अपनी सार्थकता समझती है तो दूसरी ओर क्रान्ति की अग्रदूत बन देश प्रेम हेतु बलिदान भी हो जाती है।

साहित्य समाज का दर्पण होता है, साहित्यकार समाज से प्राण रस प्राप्त करता है तो उसका दायित्व होता है कि वह पुनः समाज को प्राण रस प्रदान करे। अतः युगांकन करने वाला साहित्यकार अपने युग की समस्याओं व वातावरण के परिप्रेक्ष्य में ही अपने साहित्य का निर्माण करता है। अज्ञेय ने अपने कथा साहित्य में नारी की सामाजिक स्थिति को उच्चतर बनाने का प्रयास किया है। वस्तुतः पति द्वारा पत्नी पर शक कर अत्याचार किए जाते रहे, लडकी की शिक्षा गौण व काम प्रमुख रहा।[12,13]
युग की अभिव्यक्ति के अनुकूल नारी जीवन की प्रमुख सामाजिक समस्याओं को अज्ञेय ने अपने कथा साहित्य में स्थान दिया। वेश्या-समस्या, विधवा समस्या, परित्यक्ता समस्या, अनमेल विवाह समस्या, आधुनिकता की समस्या, आर्थिक समस्या को विशेष रूप से चित्रित करते हुए इनके समाधान हेतु विशेष अध्ययन व चिंतन प्रस्तुत किया गया। नारी के विविध रूपों का सत् व असत् रूप प्रकट करते हुए नारी संबंधी विविध आदर्शो की स्थापना की गई। अज्ञेय कथा साहित्य की नारी निम*, मध्यम वर्ग की होते हुए भी स्वाभिमानी है। अज्ञेय नारी स्वतंत्रता के पक्षधर रहे हैं। उन्होंने अपने कथा-साहित्य में नारी को प्रेम की स्वतंत्रता प्रदान की है तथा प्रेम को महत्व देते हुए विवाह संस्था को अपेक्षाकृत गौण रूप में चित्रित किया गया है।
नैतिक मानदण्ड परिस्थितियों के अनुसार बदलते रहते हैं तथा ये काल सापेक्ष होते हैं। अज्ञेय कथा-साहित्य की नारी नैतिकता के नवीन आयाम प्रस्तुत करती है। रेखा के अनुसार जिस कार्य में पाप का बोध नहीं जुडा है वह नैतिक है। अस्तित्ववादी दर्शन से प्रभावित अज्ञेय के नारी पात्र परजीवी नहीं हैं। वे सामाजिक संस्था बद्धता के प्रति विद्रोह कर व्यक्ति-स्वांतत्र्य की उद्घोषणा करती है। प्रेम संबंधों में यौन-भावना को उचित मानती है। पुरुष की समकक्षता प्राप्त करने का प्रयत्न करती है। विवाह संस्था में अविश्वास तथा उन्मुक्त प्रेम में विश्वास व्यक्त करती है। राजनैतिक क्षेत्र में साम्प्रदायिकता का विरोध कर धर्म-निरपेक्षता की स्थापना करती है। पाप एवं पुण्य की परंपरागत व्याख्या को छोड अपने दृष्टिकोण के आधार पर नयी व्याख्या प्रस्तुत कर नैतिकता को एक नयी दिशा प्रदान करती है। यह वह सच्चा स्त्री स्वातंत्र्य है जिसे आज पचास वर्षों बाद भी गिनती की ही नारियां समझ पाई हैं। जबकि अज्ञेय इस पर गहनता से दशकों पूर्व ही विचार कर गए।
अज्ञेय कथा साहित्य में नारी ने राजनैतिक क्षेत्र में भी अपना योगदान दिया है। पुरुषों के समान नारी ने भी क्रान्तिकारी कार्यों में सहयोग करते हुए विभिन्न समस्याओं का सामना किया। पुरुषों की लोलुप दृष्टि से वह इस क्षेत्र में भी नहीं बच पाई। अपनी संवेदनाओं का दमन कर, संबंधियों के मोह को त्याग कर, प्रेम का उत्सर्ग कर वह देश प्रेम के लिए बलिदान हो जाती है।[14,15]
अज्ञेय मूलतः मनोवैज्ञानिक कथाकार हैं। डॉ. देवराज उपाध्याय के शब्दो में,........ अज्ञेय आज के सर्वश्रेष्ठ मनोवैज्ञानिक कथाकार हैं। जैनेन्द्र ने अपनी कहानियों में मनोविज्ञान को अपनाया है पर उनकी दार्शनिक प्रवृत्ति पर्याप्त दूर कर उन्हें अभिभूत किए हुए है। इलाचन्द्र में अवश्य मनोवैज्ञानिक आग्रह बढा-चढा है परन्तु उनकी कथा शैली वही पुरानी है। अज्ञेय विशुद्ध मनोवैज्ञानिक कथाकार हैं- वर्ण्य-वस्तु और उसके विन्यास में।' अज्ञेय फायड, एडलर व जुंग के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों से प्रभावित हैं। इनके कथा साहित्य की नारी में अहं, विद्रोह, आत्म-पीडा सहन करने का भाव, पर-पीडा, सुख, उदात्तीकरण, आरोपण, भय, अवचेतन की ग्रंथियाँ, अन्तर्द्वन्द्व आदि मूल चित्तवृत्तियों का चित्रण हुआ है। अपनी असमर्थता व विवशता के कारण उनमें विद्रोह की भावनाएं हैं, उनके अवचेतन में बैठी ग्रंथियों की विज्ञप्ति उनके क्रिया-कलापों में होती है। स्वप्न के आधार पर उनकी मनः स्थितियों को विश्ा*ेषित किया गया है एवं जुंग के भाव-प्रतिभा सिद्धान्त के आधार पर शशि व रेखा को चिरन्तन नारी का आद्यबिम्ब माना जा सकता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि अज्ञेय ने नारी का जितना सूक्ष्म रूप प्रकट किया है, उतना किसी ने नहीं किया। उन्होंने नारी के बाह्य रूप को समझने हेतु समाजशास्त्रीय अध्ययन किया तथा उनके आंतरिक मनोविज्ञान को समझने के लिए विभिन्न मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के अध्ययन से अपनी चिन्तन शक्ति को प्रखर किया जिसके फलस्वरूप मानवीय रहस्योद्घाटन बहुत ही गहराई से मुखरित होने लगा। अज्ञेय कथा साहित्य के नारी पात्रों का जो जीवन-विकास दिखता है, उसमें अज्ञेय का सामाजिक, नैतिक, राजकीय, सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक एवं भावनिक परिकल्पना का विकास तथा मनोवेगों का दर्शन मिलता है। इस कारण अज्ञेय के नारी पात्रों के जीवन नैतिक तथ्यों, आदर्शों, नये व्यक्तिगत समस्याओं की प्रतिच्छाया पडी है। सामाजिक, नैतिक व राजकीय आंदोलन से नारी अपने जीवन में किस प्रकार नवीन चेतना, नवीन अधिकार व कानूनी अधिकारों में नवीन परिवर्तन द्वारा सम्मानपूर्वक साधिकार स्थान पा चुकी है, यह अज्ञेय कथा-साहित्य में चित्रित हुआ है। उनके नारी चरित्र बदलते हुए मानवीय-मूल्यों के प्रतिनिधि पात्र हैं। वह समाज में पुरुष के साथ बाहर व घर में समान अधिकार के नाते सम्मानीय जीवन बिताने का प्रयत्न करती है। उनके नारी पात्रों में एक विद्रोही व्यक्तित्व है, वे नव्य चेतना को समझती हैं। उनमें उसे ग्रहण करने की बौद्धिक शक्ति हैं, आर्थिक स्वतंत्रता तथा संघर्ष करने की मानसिक तैयारी है। इस कारण उनके व्यक्तित्व में प्रकाश है।[16,17,18]
स्पष्ट है कि अज्ञेय स्त्री स्वातंत्र्यता को विभिन्न आयामों, उसके कोणों और टैन्जैंट के साथ देखते थे। यह सोचा जा सकता है कि अज्ञेय के यह चरित्र रेखा, सुनीता, आदि काल्पनिक नहीं रहे होंगे। मानव मन की अनुभूति के कुशल चितेरे अज्ञेय ने अपनी सूक्ष्म दृष्टि, विराट फलक और संवेदना के स्तर पर खरी, सटीक बिंदास और अपनी चाहना को (थोडी सी हिचक के बाद) खुलकर प्रकट करने वाली स्त्री को स्थापित किया है। वह स्त्री जिसके जीवन में आया पर पुरुष अपने गुणों से यदि उसे आकर्षित करता है तो अपने बंधनों को तोडने में हिचकिचाती नहीं है।
उचित अनुचित से परे क्या ऐसी नायिका द्वारा विद्रोह करना विवाह संस्था पर प्रश्ा* लगाना नहीं है? वह सच्चा लेखक ही क्या जो घिसी पिटी लीक पर चले? अज्ञेय जैसे कालजयी व्यक्तित्व ने स्त्री स्वातंत्र्य के उन पहलुओं को छुआ जो आज पचास वर्षों बार हमारे सामने हैं। वस्तुतः दैहिक स्वतंत्रता स्त्री की आजादी का एक आयाम मात्र है। दुर्भाग्य है आज का समस्त स्त्री विमर्श चिंतन देह के इर्दगिर्द सिमट गया है। सुंदर कामकाजी और अपनी मर्जी की मालिकन महिलाओं, युवतियाँ पुरुषों को यत्र तत्र सर्वत्र दिख रही है।

पुरुष विशेषकर तथाकथित अवसरवादी बुद्धिजीवी भी बहती गंगा में बार-बार अनेक बार-डुबकियाँ लगाकर भी तृप्त नहीं हुआ है। कैसी विडंबना है कि अज्ञेय जो आज नवउदारवादी माहौल में स्त्री की दशा और दिशा की यथार्थता अपने कथा साहित्य के माध्यम से वर्षों पहले बता गए। उनका पाठ व्याख्यान उस रूप में न होकर महज, रस्म अदायगी, श्रद्धांजलि स्वरूप ही हो रहा है।[19,20] विखंडनवाद का सिद्धान्त लागू है, समझती हूँ मैं परन्तु अज्ञेय भी इससे अच्छी तरह परिचित थे। इसीलिए उन्होंने अपने लेखन में समाज और उसकी रूढिवादिता का विखंडन किया, विखंडन किया स्त्री की जंजीरों में कैद घुटती छवि का, विखंडन किया पुरुष सत्ता का। आप उपन्यासों में देखिए वहाँ पुरुष नायक अर्द्धनारीश्वर की तरह है। उससे भय या डर नहीं लगता बल्कि वह सखा, सहयोगी, सहचर, साथी है। वह साथी जिसे स्त्री मीरा (१५०६ ईस्वी) से लेकर आज २०१६ तक तलाश रही है। तलाश फिलहाल पूरी होने के आसार कम है। पुरुषों की चतुराई, हठधर्मिता, धूर्तता, कुटिलता और सैक्स की चाहना से त्रस्त आज की नारी ने अपने व्यक्तित्व सोच का और विकास कर लिया है।
बौद्धिकता से लबरेज, धोखा खाकर संभल चुकी आज की स्त्री अपनी मेधा से स्वाबंलबी बनी अपने पथ पर गर्वोन्मुक्त ढंग से चल रही है। यह मुझे वही अज्ञेय की नारी दिखाई देती है, जिसकी भविष्यवाणी (हर अच्छा साहित्यकार) अज्ञेय अपने कथा साहित्य में करते हैं।[21,22]
बेहद दिलचस्प लगता है यह देखना कि पुरुष (माफ करना भुवन या अन्य नायकों जैसा आज नहीं है और वह बौद्धिकता, नारी को समझने के स्तर पर (ज्यादातर) आज भी वहीं का वहीं है।
बौद्धिकता, आत्मविश्वास और अपने से भिन्न, परिचित नारी के साथ तालमेल बिठाने की जद्दोजहद आज पुरुष को ज्यादा करनी पड रही है।
एक रोचक तथ्य यह भी है कि उस वक्त की नारी के पास संपत्ति में (पति/पिता का) अधिकार घरेलू हिंसा अधिनियम जैसे कानूनी अधिकार नहीं हैं। फिर भी अज्ञेय की बुद्धिमान नायिकाओं ने रास्ता बनाया। आज जब नारी अपने अधिकारों के प्रति सावचेत है तो यह प्रासंगिक होगा कि स्त्री-पुरुष सम्बन्धों की नई पडताल, नई व्याख्या, नए परिप्रेक्ष्य में की जाए। अभी अभी आई पुस्तक 'अपने अपने अज्ञेय' (ओम थानवी) में भी अज्ञेय के व्यक्तित्व के विविध आयामों, विचारों से परिचय होता है। पर यह दृष्टि अपने आप में महत्त्वपूर्ण है कि बिना किसी शोर शराबे के एक विशिष्ट व्यक्तित्व नारी संचेतना, स्वातंत्र्य को अनूठे, अनचीन्हें, सहज स्वाभाविक, ऊँचाइयाँ दे गया। एक शताब्दी बीत गई लेकिन अज्ञेय आज और अधिक प्रांसगिक, विशिष्ट हैं। यही उस कालजयी लेखक की सार्थकता और उपयोगिता है संपूर्ण भारतीय समाज[23,24]

परिणाम

मानव सभ्यता की विकास-यात्रा के समानांतर स्त्री का संघर्ष भी अपनी निरंतरता में आरम्भ से ही समाज में विद्यमान रहा है। देश-काल के साथ इस संघर्ष के सिर्फ स्वरूप बदलता रहा है। मूल स्वर में सामंती युग से लेकर आज के आधुनिक युग तक एकतानता है। हमारे समाज में स्त्री को कभी रीति-रिवाज के नाम पर तो कभी पितृसत्तात्मक अधिकार भावना के कारण, कभी पुरुष की अहम् भावना के कारण तो कभी शिक्षित होने एवं आत्मनिर्भर होने के कारण सदैव कदम-कदम पर शोषण का शिकार होना पड़ा है। इस शोषण और उसके विरुद्ध स्त्री के नितांत निजी संघर्षों की लंबी एवं करूण कहानी है। उसे न केवल बाह्य समाज बल्कि स्वयं अपने परिवार से और यहाँ तक कि ख़ुद से भी निरंतर संघर्ष करना पड़ा है। इसी संघर्ष को सिमोन द बउआर ने अपनी पुस्तक 'द सेकंड सेक्स' में बताया था कि "स्त्री पैदा नही होती, उसे बना दिया जाता है"[1] यह कथन देश-विदेश की सभी स्त्रियों के संघर्ष को पूर्णतया बयां करता है। भारतीय समाज में तो स्त्री को हमेशा से एक वस्तु के रूप में देखा जाता रहा है। रेखा कास्तकार स्त्री विमर्श के सरोकार पर बात करते हुए कहती हैं कि "स्त्री विमर्श का सरोकार जीवन और साहित्य में स्त्री मुक्ति के प्रयासों से है। स्त्री की स्थिति की पड़ताल उसके संघर्ष एवं उसकी पीड़ा की अभिव्यक्ति के साथ-साथ बदलते सामजिक संदर्भों में उसकी भूमिका, तलाशे गये रास्तों के कारण जन्में नयें प्रश्नों के टकराने के साथ-साथ आज भी स्त्री की मुक्ति का मूल उसके मनुष्य के रूप में स्वीकारे जाने का प्रश्न है।"[2] इसी स्वीकारोक्ति की तलाश करते हुए प्रभा खेतान जी ने जब सिमोन द बोउआर की पुस्तक 'द सेकंड सेक्स' का हिंदी में अनुवाद किया तब उन्होंने उसकी भूमिका में लिखा है कि- "हम भारतीय कई तहों में जीते हैं।[25,26] यदि हम मन की सलवटों को समझते हैं, तो जरूर यह स्वीकारेंगे कि औरत का मानवीय रूप सहोदरा कही जाने के बावजूद स्वीकृत नहीं है। लोगों को उससे उम्मीदें बहुत होती हैं। वह अपनी सारी भूमिकाओं को बिना किसी शिकायत के निभाए...स्पष्टवादिता उसका गुनाह समझा जाता है।.."[3]

कहते हैं कि साहित्य रचनाकार के जीवन-जगत की अनुभूतियों और कल्पना के सहज समन्वय का रूपाकार है। लेखक को समाज की सभी परिस्थितियां प्रभावित करती हैं, ठीक वैसे ही जैसे एक कारीगर को कच्चा माल प्रभावित करता है। परिवेश से ली गयी अनुभूतियां ही रचनाकार की संवेदनाएं बनाती हैं। साहित्य में जीवन के साथ-साथ मानव-मन की तथा चरित्र की व्यापक गहराई दिखाई पड़ती है। समाज में व्याप्त विचारों का प्रभाव

साहित्य में किसी न किसी रूप में देखा जा सकता है। समकालीन साहित्य की प्रत्येक विधा स्त्री जीवन के सभी संघर्षों को स्वर प्रदान करती है। नारी का संघर्ष पुरुषों से बराबरी करने या उनसे आगे निकल जाने का नहीं बल्कि उसका संघर्ष समाज में, परिवार में, स्वयं को स्थापित करने तथा अपनी अस्मिता की तलाश के लिए है।[27,28]

'अस्मिता' एक ऐसा शब्द है जो व्यक्ति को पहचान के एक अलग धरातल पर लाकर खड़ा कर देता है। डॉ. सुरेश चन्द्र गुप्त लिखते हैं- " अस्मिता को परिभाषित करना कठिन है, फिर भी 'मै हूँ' से लेकर 'मैं किस लिए हूँ' तक की अंतर्यात्रा कई पड़ावों से होकर अंततः अस्मिता के गंतव्य पर पहुँचकर ही पूरी होती है।"[4] बेहतर समाज की स्थापना हेतु जो मुक्ति संघर्ष की प्रणालियां इतिहास में रूपायित हुई हैं, उनमें एक है 'नारी चिंतन' है। इस चिंतन धारा के केंद्र में भी अस्मिता की तलाश का ही प्रश्न रहा है। स्त्री विमर्श के माध्यम से प्रारंभ हुई इस स्त्री अस्मिता के संघर्ष ने बदलाव का कोई बहुत बड़ा चमत्कार तो नहीं उत्पन्न किया परन्तु समाज की मानसिकता में आंशिक बदलाव की स्थिति अवश्य बनाई है। स्त्री विमर्श स्त्री के जीवन के अनछुए, अनजाने पहलुओं, पीड़ा-जगत के उद्घाटन के अवसर उपलब्ध कराता है। वह स्त्री के प्रति हो रहे शोषण के खिलाफ एक सशक्त संघर्ष है। आज के समय में समकालीन कथा साहित्य पर चर्चा तब तक पूरी नहीं मानी जाती, जब तक उसमें स्त्री चिंतन, स्त्री अस्मिता से प्रेरित कथा को स्थान न दिया जाए। कहा जाता है कि किसी भी सभ्य समाज की संस्कृति, अवस्था और विकास आदि का मूल्यांकन उस समाज की स्त्रियों की स्थिति के आकलन द्वारा ज्ञात किया जा सकता है।

सामान्य अर्थों में कहें तो स्त्री विमर्श स्त्री की अस्मिता मूलक पहचान को दिलाने का कार्य करता है। यह स्त्री के प्रति हो रहे शोषण के विरूद्ध संघर्ष है। 'स्त्री विमर्श' भी स्त्री को मनुष्य रूप में स्थापित करने का प्रयास करता है। 'स्त्री विमर्श' स्त्री की देह के धरातल पर मुक्ति की पक्षधरता के साथ-साथ उसकी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, समानता की बात करता है। यह मात्र देह का विमर्श नहीं, बल्कि रूढ़ हो चुकी मान्यताओं, परम्पराओं के प्रति असंतोष तथा मुक्ति का स्वर है। वैसे तो भारत में नारी-चर्चा का इतिहास बहुत पुराना है, किन्तु वह लिखित रूप में हमें उपलब्ध नहीं है। अतः पश्चिम के स्त्री विमर्श की चर्चा पहले की जा सकती है, लेकिन हिंदी साहित्य में स्त्री विमर्श का प्रादुर्भाव 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध से माना जाता है। जिसमें महिला रचनाकारों ने स्त्री के अधिकारों, शिक्षा, स्वावलंबन आदि पर लेखन कार्य किया, जिसका मुख्य स्वर नारी मुक्ति का था।

स्त्री विमर्श उत्तर-आधुनिकता की धुरी पर खड़ा एक सशक्त साहित्यिक विमर्श है। स्त्री विमर्श केवल स्त्री की मुक्ति या पुरुष की बराबरी का आख्यान नहीं है बल्कि अत्यंत गहन अर्थवाला यह शब्द नारी मुक्ति के साथ-साथ नारी की अस्मिता, चेतना, व स्वाभिमान को भी अपने में समेट लेता है। इसे ध्यान में रखते हुए हिंदी की समकालीन महिला कथाकारों ने जीवन के बहुविध पक्ष को लेकर लेखन कार्य किया है। तथापि इसमें संदेह नहीं है कि इसके केंद्र में नारी ही रही है। नारी जीवन की अन्त:बोध परिस्थितियों के अनछुए पहलुओं की प्रस्तुति के कारण इनकी कृतिया बहुमूल्य एवं विशिष्ट स्थान रखती हैं।[29,30]

कालक्रम की दृष्टि से देखा जाय तो आरम्भ में लेखिकाओं की रचनाधर्मिता प्रमुखतःउपदेश प्रधान रही। उनका ध्यान नारी दुर्दशा की ओर जा तो रहा था, लेकिन वह उस दिशा में कुछ क्रांतिकारी कदम नहीं उठा पा रही थी। वह उसमें परम्परागत दृष्टिकोण ही अपना रही थी। भारतीय महिलाओं ने प्रारंभ में समाज सुधारकों की ऊँगली पकड़कर चलना सीखा किन्तु जल्द ही पुरुषों की ऊँगली छुड़ाकर दूर भी हो गईं। डॉ. रस्तोगी का मानना है कि "साहित्य के विकास में नारी का योग उसके भावनात्मक जगत के अस्तित्व की कहानी है।"[5] इसी भावनात्मकता को आगे के दशकों में आने वाली महिला रचनाकारों ने स्त्री चेतना के विभिन्न आयामों के रूप में उजागर किया। पहले वह मूक पशु की तरह सब कुछ सहन करती थी, परन्तु अब वह पुरुष के अत्याचारों का विरोध कर अपनी अलग पहचान बनाने में सक्षम होती नजर आती है। यह चरण दरअसल महिला-लेखन की बहुत बड़ी उपलब्धि है। 'सुदर्शन' वर्तमान नारी की उपलब्धि बताते हुए कहते हैं कि "आज की शिक्षित नारी की प्रत्येक क्षेत्र में सक्रिय भूमिका है, शिक्षा, चिकित्सा, तकनीकी, कला, कविता, साहित्य-सृजन, पर्वतारोहण, कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं है जहाँ नारी ने प्रवेश न किया हो।"[6]

कृष्णा सोबती, चित्रा मुद्गल, मंजुल भगत, उषा प्रियम्वदा, ममता कालिया आदि लेखिकाओं ने समाज में व्याप्त विभिन्न विद्रूपताओं, राजनैतिक-आर्थिक मुद्दों तथा स्त्री अस्मिता, पारिवारिक घुटन आदि को अपने कथा साहित्य का प्रमुख विषय बनाया। तमाम दूसरे विषयों के बावजूद इनके साहित्य में स्त्री मुक्ति का प्रश्न ही केंद्र में है। मृदुला गर्ग भी उन महिला रचनाकारों में से एक हैं, जिन्होंने अपने साहित्य में स्त्री मुक्ति के प्रश्न को साहस के साथ उजागर किया। हालांकि उनके कथा साहित्य का आधार स्त्री-स्वातंत्र्य पर स्थिर ज़रूर है, तथापि वे स्त्री मुक्ति के प्रश्न को अन्य समकालीन लेखिकाओं की तरह नहीं देखती हैं। उनका ट्रीटमेंट अपने समकालीनों से अलग दिखाई देता है। उनके लिए समाज में पुरुषों की बराबरी कर लेना या पुरुषों से आगे बढ़ जाना तथा सामाजिक एवं संवैधानिक अधिकार प्राप्त कर शारीरिक रूप से स्वतंत्र हो जाना मात्र ही स्त्री स्वतंत्रता नहीं है। उनके लिए स्त्री की मुक्ति का अर्थ तन और मन दोनों की मुक्ति में निहित है। वे 'फेमिनिज्म' का अर्थ दरअसल सोच की जकड़बंदी मुक्ति के रूप में लेती हैं। समाज की सड़ी-गली मान्यताओं, संस्कारों आदि से मुक्ति पा लेना ही उनके लिए स्त्रीवाद का हासिल है। मृदुला जी नारीवाद की परिभाषा देते हुए कहती हैं कि- "नारीवाद की परिभाषा बस इतनी है कि नारी को अधिकार है यह तय करने का कि वह क्या करना चाहती है? क्या नहीं? कोई मुखौटा नहीं की स्त्रियों पर चस्पा कर दिया जाए।"[7]

नर-नारी संबंध मृदुला गर्ग के प्रायः सम्पूर्ण साहित्य के केन्द्रीय सूत्र रहे हैं। वैसे तो कई उपन्यासकार नर-नारी संबंधों को पारम्परिक, नैतिक मान-मर्यादाओं के घेरे में रखकर चित्रित करते हैं, परन्तु मृदुला जी ने कभी भी इन बन्धनों को स्वीकार नहीं किया। उनका मानना है कि दाम्पत्य जीवन में एकरसता तथा आपसी सामंजस्य न होने के कारण या प्रेम के आभाव के कारण ही विवाहेतर संबंध स्थापित होते हैं। मृदुला जी 'शरीर के प्रेम' अर्थात वह प्रेम जो मन या उसकी किसी भावना से नहीं उपजता, बल्कि आहार, निद्रा, भय की तरह शारीरिक आवश्यकताओं के रूप में प्रकट होता है, को पशुवृति मानने से इनकार करती हैं। वे शारीरिक संबंधों का सम्बन्ध नैतिकता-अनैतिकता अथवा पाप- पुण्य से न जोड़ते हुए प्राकृतिकता से जोड़ती हैं।[31,32] 'उसके हिस्से की धूप' उपन्यास में उनकी कथा नायिका की मान्यता- "प्यार करना कला नहीं, जरूरत है'', मृदुला जी की प्रेम सम्बन्धी मौलिक और बोल्ड मान्यता को रेखांकित करती है। उपन्यास की पात्र मनीषा का यह कहना कि "यूँ तो इंसान की न जाने कितनी जरूरतें होती हैं, लेकिन यह जरूरत ऐसी है, जिसमें कोई अन्य व्यक्ति भी सम्मिलित रहता है। बिना शोषण इसकी पूर्ति भी तभी हो सकती है जब दोनों की जरूरत एक हो। जब जरूरतें एक हों तो शरीर का मिलन अद्भुत अनुभव बन जाता हैं।"[8] उनके यहाँ प्रेम शुरू से अंत तक शरीर का विषय है, शरीर का अर्थात अपनी जरूरतों का। मृदुला जी की दृष्टि में प्रेम का यथार्थ 'शरीर' है। उपन्यास में मनीषा प्रेम को पाने के क्रम में जितेन को छोड़ मधुकर की ओर आकर्षित होती है लेकिन उसे पूर्ण प्रेम की प्राप्ति कहीं नहीं होती। ऐसा प्रेम जो उसे आत्मसंतुष्ट कर दे, एक अंतहीन तलाश बन कर रह जाता है। इस उपन्यास की मुख्य समस्या नारी के जीवन की रिक्तता है, जिससे मनीषा पूरे उपन्यास में जूझती नजर आती है। उपन्यास में नायिका पति जीतेन से तलाकशुदा होने पर भी जब दुबारा चार साल बाद उससे मिलती है तब जीतेन के प्रति उसके शारीरिक समर्पण पर अधिकांश विचारकों ने प्रश्न चिह्न लगाया है और उसे स्त्री की मर्यादा के विरुद्ध बताया है, परन्तु डॉ. शीलप्रभा मृदुला गर्ग का समर्थन करते हुए इसे आधुनिकता और विचारों का लचीलापन मानते हुए कहती हैं कि "यदि यह स्थिति पूर्व युग की होती तो पति को पत्नी की सूरत भी सहन नही हो सकती थी। किन्तु आज के युग में जहाँ विचार प्रौढ़ हो चुके हैं उनमें लचीलापन आ गया है, ऐसे क्षणिक पुनर्मिलन भी संभव है।"[9]

उपन्यास के अंत तक पहुँचते-पहुँचते कथा नायिका को यह अहसास हो जाता है कि उसे अपने खालीपन को किसी अन्य के द्वारा नहीं बल्कि स्वयं भरना होगा और वह खुद लेखन कार्यों से जुड़ जाती है। जिससे उसे आत्म संतुष्टि प्राप्त होती है। उसको एक अलग पहचान मिलती है। वह लेखिका के रूप में समाज में प्रतिष्ठित होती है। इस उपन्यास के द्वारा मृदुला जी ने नारी के अस्मितामूलक संघर्ष, प्रेम की तलाश तथा आत्मसंतुष्टि की प्यास जैसे प्रश्नों को न सिर्फ उठाती हैं बल्कि उसका हल भी तलाशती दिखाई देती हैं।

मृदुला जी नारी को परम्परागत सोच से मुक्ति दिलाकर उसे आत्मनिर्भर बनाना चाहती हैं। स्त्री मुक्ति का उपाय बताते हुए मार्क्स एंजेल्स ने भी कहा था- "स्त्रियों की मुक्ति की पहली शर्त यह है कि पूरी नारी जाति फिर से सार्वजानिक उद्योग में प्रवेश करे और आवश्यकता है कि समाज की आर्थिक इकाई होने का वैयक्तिक, पारिवारिक गुण नष्ट कर दिया जाए।"[10] उपन्यास 'उसके हिस्से की धूप' में जैसे इसी विचार का भारतीय स्त्री मुक्ति के संदर्भ में प्रतिफलन दिखाई देता है। मृदुला गर्ग के इस उपन्यास में पुराने नैतिक मूल्यों का

विरोध तथा प्रेम सम्बन्धी नयी नैतिकता का चित्रण इसी शर्त पर आधारित है। अब तक स्त्री स्वयं को पुरुष की दृष्टि से स्वयं को परिभाषित करती आ रही थी। वह अबतक अपनी सार्थकता किसी अन्य व्यक्ति से जुड़ने में तलाश रही थी। लेकिन इस उपन्यास में आधुनिका नायिका मनीषा अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व को परिभाषित करने हेतु प्रयासरत दिखाई देती है। वह सामाजार्थिक रूप से अपने आपको आत्मनिर्भर बनाने का प्रयास करती है और अपनी सार्थकता अपनी आत्मनिर्भरता में ही ढूँढती है। योगेश गुप्त के शब्दों में – "मृदुला गर्ग अपने साहित्य में वैयक्तिक से सामाजिक और सामाजिक से वैज्ञानिक, वैज्ञानिक से दार्शनिक की यात्रा करती दिखाई देती हैं। थीम की कटेगरी के प्रति उनका कोई पूर्वाग्रह नहीं है और न ही कोई आग्रह। घटनाओं और चरित्रों को सहज भाव से व्यक्त करती हैं और न यह मानती हैं कि थीम जितना नया होगा कला उतनी ही निखरेगी। प्रयोगधर्मा कथाकार होने के नाते उनकी सम्भावनाओं की शायद ही कोई सीमा निर्धारित की जा सकती है। अच्छी बात यह है कि कथ्य के स्तर पर वह शत-प्रतिशत फासिस्ट हैं और साहित्य में लम्बी खोज की यात्रा की पहली शर्त शायद यही है।"[11]

मृदुला जी का सबसे पसंदीदा विषय प्रेम है, परन्तु उन्होंने विवाहपूर्व प्रेम की अपेक्षा विवाहेतर प्रेम का चित्रण अपने उपन्यासों में कहीं अधिक किया है। यह वह प्रेम है जिसे समाज ने हमेशा नकारा है और शायद यही कारण रहा है कि उनके 'चित्तकोबरा' उपन्यास को भी विवादों के कठघरे में खड़ा होना पड़ा। हालांकि यह उपन्यास मनुष्य जीवन में प्रेम की सार्थकता सिद्ध करने में तथा उसके विविध वर्णी स्वरूप निर्धारण में बहुत ही अनूठा है तथापि अपने इस उपन्यास में मृदुला जी ने प्रेम का चित्रण जिस रूप में किया है वह कथित तौर पर थोड़ा बोल्ड है।[33,34] शायद यही बोल्डनेस लोगों को पसंद नहीं आई जिस कारण इस उपन्यास को विवादों से जूझना पड़ा। इस उपन्यास में पुरुष की बराबरी करती स्त्री की देह गाथा और मनः गाथा दोनों का सम्यक चित्रण मिलता है। मृदुला गर्ग ने चित्तकोबरा उपन्यास में पारस्परिकता के विरुद्ध मोर्चा खड़ा करके स्त्री को अनेक तथाकथित मर्यादा बंधनों से मुक्ति दिलाई है। "इस उपन्यास में शीलता और अश्लीलता का प्रश्न उठाकर प्रायः उन समस्याओं से आँखे चुराने की कोशिश होती है, जिनके आधार पर स्त्री को कथित मर्यादा की सीख दी जाती है। यह एक लेखिका के साहस का प्रश्न माना जाना चाहिए कि उसने मजबूती से पारस्परिकता के विरूद्ध खड़े होकर नये समय में नई जीवन दृष्टि की मांग करने की चुनौती प्रस्तुत की है।"[12]

'चित्तकोबरा' उपन्यास में मनु, रिचर्ड और महेश तीन पात्र हैं। मनु का विवाह महेश से हो चुका होता है, रिचर्ड मनु के जीवन में बाद में आता है। महेश और मनु ऐसे पति-पत्नी हैं, जो एक-दूसरे से असंतुष्ट हैं। महेश मनु की सभी जरूरतें पूरी करता है। मनु भी अपना पत्नी धर्म निभाती है। तथापि उनके रिश्ते सहज नहीं हैं। इस असहजता के कारण ही मनु रिचर्ड की तरफ आकर्षित होती है। मृदुला जी के उपन्यासों की खास बात यह है कि वे कभी अपने उपन्यास में पुरुष पात्र, जो मुख्य स्त्री पात्र का पति है उसे गलत या प्रतिनायक नहीं साबित करतीं। वे ख़ुद अपनी नायिका के मुख से ही कहलवाती हैं कि महेश बहुत अच्छे हैं, मेरा बहुत ख्याल रखते हैं, मेरी सभी जरूरतों को पूर्ण करते हैं।. . . इस तरह यह उपन्यास मनु- महेश-रिचर्ड के त्रिकोणात्मक प्रेम सम्बन्धों की कथा बन जाता है। इस उपन्यास में मृदुला जी प्रेम को स्त्री-पुरुष संबंधो के धरातल से ऊपर उठाकर अध्यात्मिक अनुभूति की की ओर ले जाती हैं। वे कहती हैं कि – "एक से निस्वार्थ प्रेम करने पर अहम् का धीरे-धीरे विभाजन होता है और व्यक्ति उस बिंदु पर पहुँच जाता है जहाँ मानव मात्र से प्रेम के आदर्श तक पहुंचना सरल और संभव होता है चाहे वह रिचर्ड में देखा जाय या मदर टेरेसा में।"[13] यहीं भावभूमि चितकोबरा उपन्यास की ताकत भी है तथा उसकी प्रेरणा भी।

'चितकोबरा' में मृदुला गर्ग ने आज के परिवेश में विवाह संस्था की निरर्थकता को भी रूपायित किया है। वे प्रेम, विवाह और सेक्स जैसे मूलभूत तथ्यों को लेकर इस उपन्यास का ताना-बाना बुनती हैं। वर्तमान समय में प्रेम से भावुकता का तत्व समाप्त हो गया है और वह सिर्फ भोग और वासना का पर्याय बन कर रह गया है। इस उपन्यास में लेखिका ने प्रेम को एक स्थिति के रूप में चित्रित किया है। उपन्यास में 'विवाह एक से और प्रेम दूसरे से' वाली बात दृष्टिगोचर होती है और इन दो पाटों के बीच पिस रहे मानव मन की एक विचित्र स्थिति को लेखिका ने अपने उपन्यास का विषय बनाया है। वे कहती हैं– "मनुष्य का मन बड़ा विचित्र है। प्राप्त से उसका मन नहीं भरता और अप्राप्त के प्रति एक आकर्षण उसके मन में सदैव रहता है। उसके तन और मन की सम्पूर्ण तृप्ति कभी भी किसी एक से नहीं होती।"[14] इस उपन्यास में लेखिका ने पहले से चली आ रही क्षुद्र मान्यताओं को तथा स्त्री के लिए बनाई गयी अमानवीय सीमाओं को तोड़ा है। इस उपन्यास में स्त्री-पुरुष संबंधो की व्याख्या एक नये धरातल पर लेखिका ने की है। उन्होने शरीर और मन के द्वंद्व से उत्पन्न काम-कुंठा को नष्ट करने के लिए

नैतिकता के बन्धनों को तोड़कर यौन संबंधो के विषय में नारी की भावनाओं पर बेबाक होकर प्रकाश डाला है। सामाजिकता के नाम पर स्त्री-पुरुष के संबंधो पर थोपे गये नियम-कानून को लेखिका ने यहाँ अस्वीकार कर दिया है।

उनके एक अन्य उपन्यास "मैं और मैं" में भी औरत के शोषण की कहानी दिखाई गयी है। किस प्रकार अपने अहम की तुष्टि करने वाली एक लेखिका आर्थिक और नैतिक शोषण का शिकार होती है इसका मार्मिक चित्रण इस उपन्यास में किया गया है। यह उपन्यास एक उच्चवर्गीय लेखिका के अपराधबोध और एक निम्नवर्गीय लेखक के अपराधबोध की टकराहट की कहानी भी कहता है। इस उपन्यास में माधवी, संजय और कौशल तीन पात्र हैं। माधवी लेखिका है और कौशल भी। इस उपन्यास में वैचारिक धरातल पर दोनों रचनाकारों के अहम की टकराहट को दिखाया गया है, साथ ही कौशल द्वारा माधवी के रूप में ब्लैकमेल की गयी एक लेखिका का सूक्ष्म विश्लेष्ण भी किया गया है। इस उपन्यास में 'परिवार' जो कि स्त्री का सीमित क्षेत्र है, की हद को पार कर एक अलग कलात्मक प्रस्तुतिकरण किया गया है।

यह उपन्यास पाठक को भावनात्मक और वैचारिक दोनों धरातलों पर चिंतन हेतु बाध्य करता है। उपन्यास में एक स्त्री को अबला और भोली समझ उसे ठगने वाले धूर्त पुरुष की कहानी है। कथा-पात्र कौशल मानवीय स्तर से गिरा हुआ एक धूर्त अपराधी दिमाग रखने वाला व्यक्ति ही दिखायी देता है। यहाँ एक सामान्य स्त्री के दुःख दर्द की परिपाटी से हटकर एक लेखिका के जीवन संघर्ष की कथा को कथ्य का विषय बनाया गया है जो अपेक्षाकृत चिंतनशील भी है, और सजग भी। उसके आस-पास की दुनिया एक झूठ की दुनिया है- एक 'फेक वर्ल्ड' जिसमें रिश्तों की बुनियाद ही झूठ पर टिकी है। उपन्यास में एक जगह लेखिका कहती है- "कितना आसान है एक के बाद एक झूठ बोलते चले जाना और कितनी खूबसूरत, पारदर्शी और रंगबिरंगी है झूठ की दुनिया। उसके सामने सच क्या है, एक ठोस मटमैला खुरदुरा पत्थर, झूठ की दुनिया में उड़ान भरनेवाला, कल्पना के गुब्बारे में सुई चुभाकर पथरीली धरती पर क्यों उतरेगा?"[15] अर्थात यह रंगीन फेक वर्ल्ड ही अब हमरे समय की सबसे बड़ी सच्चाई है और हमारी नियति भी। दरअसल यह उपन्यास पूंजीवादी व्यवस्था का आईना है। जिसमें मानवीय रिश्तों का बिम्ब और भी कुरूप और वीभत्स दिखाई देता है। यहाँ पूँजी मानवीय सम्बन्धों को निर्धारित भी करती है और उसका नियमन भी।

लेखिका का 'कठगुलाब' उपन्यास भी इसी तरह के स्त्री संघर्षों को दर्शाने वाला एक बहुचर्चित उपन्यास है। मृदुला जी का यह उपन्यास नारी दमन और शोषण को दिखाते हुए नारी के संघर्ष की गाथा कहता है। इसमें नारी को प्रताड़ित करती आ रही आत्मघाती सामाजिक व्यवस्था से परिचित कराना लेखिका का प्रयोजन है। इस उपन्यास में नारी पर पुरुष द्वारा होने वाले आर्थिक, शारीरिक और बौद्धिक शोषण की प्रतिक्रिया स्वरूप आत्मनिर्भरता तथा पुरुष सत्ता के समानांतर स्वयं को सिद्ध करने के लिए की गयी नारी की जद्दोजहद की कथा है। इस उपन्यास में उन्होंने दिखाया है कि चाहे पूरब हो या पश्चिम, पुरुष की मानसिकता समान है। बस की भीड़-भाड़ में धँसी लड़की हो या सुनसान इलाके में पैदल चलती लड़की, पुरुष की लार टपकती नज़रों से उसका बच पाना असंभव है। स्त्री पर हो रहे शोषण को दर्शाते हुए उपन्यास में लेखिका एक जगह पर नायिका नमिता द्वारा कहलवाती है कि - "कैसी अभागिने हैं हम दोनों, मेरी जिंदगी माँ ने चौपट की, तेरी पिता ने।"[16] इस उपन्यास में लेखिका ने स्त्री की अस्मिता के सवाल को उठाया है। लेखिका ने इस उपन्यास में स्त्री को स्त्री रूप में स्थापित किया है। जिस तरह कठगुलाब के बीज को पानी न दें तो वह सूख जाता है, उसकी कलियां नहीं खिलतीं ठीक उसी प्रकार जब तक स्त्रियों को अपनेपन और सम्मान रूपी भावजल से भिगोया न जाए तब तक वह भी कठगुलाब के समान कठोर बनी रहती है। जब तक अपनापा और सम्मान नहीं मिलता इसकी कलियाँ भी तब तक नहीं खिलतीं। फूल नष्ट हो जाते हैं और बस बीज बचा रह जाता है। यहीं दर्शन इस उपन्यास की स्त्रियों को प्रेरित करता है और वह अपने स्त्रीत्व की सम्पूर्ण सार्थकता 'ममत्व' को पाने में समझती हैं और तमाम संघर्षों के बाद ही सही उसे अंततः पा भी लेती है। ममत्वपूर्ण स्त्रीत्व की इस तलाश की प्रक्रिया में ही यह उपन्यास सम्पन्न होता है।

अपने अन्य समकालीनों की तरह मृदुला जी केवल स्त्री की आर्थिक, शारीरिक स्वतंत्रता और अधिकारों की बात ही नहीं करतीं अपितु स्त्री के राजनीतिक, संवैधानिक अधिकारों के लिए भी आवाज उठाती हैं। अपने 'वंशज' उपन्यास में उन्होंने स्त्री को उसके प्रदत संवैधानिक अधिकारों से भी वंचित कर दिये जाने के प्रश्न को बड़ी मजबूती से उठाया है। उपन्यास में नायक सुधीर उसकी पत्नी और बहन रेवा की कहानी है। इस उपन्यास में

स्त्री को पैतृक संपत्ति में अधिकार देने की बात की गयी है। आज भी उसके अधिकारों की अवहेलना की जा रही है, जबकि आज हमारे संविधान में यह प्रारूप है कि पिता की सम्पत्ति में पुत्री का बराबर का अधिकार है। लेकिन समाज अभी उसे अपना नहीं पाया है। समाज आज भी पुत्री में सारी योग्यता होते हुए भी अपनी सम्पत्ति में अधिकार पुत्र को ही देता है, पुत्री को नहीं। इसी परिप्रेक्ष्य में डॉ रमा नवले कहती हैं-"शुक्ल साहब जैसा अत्यंत न्यायप्रिय आदमी और सुधीर से अधिक रेवा को चाहने वाला लड़की को पैतृक सम्पत्ति में हिस्सा नहीं देता। तब कानून बनाने से क्या होता है, वंशज तो लड़का ही रहेगा, लड़की कभी नहीं, इस कटु सत्य की अभिव्यक्ति यह उपन्यास करता है।"[17]

मृदुला गर्ग का उपन्यास 'मिलजुल मन' उनके अब तक के सभी उपन्यासों से अलग ही तरह का उपन्यास है। यह एक आत्मकथात्मक उपन्यास है, यानि यह एक ऐसी आत्मकथा है जिसे उपन्यास का रूप दे दिया गया है। ऐसा संभवतः इसलिए किया गया है क्योंकि एक आत्मकथा लेखक से जिस ईमानदारी से साफगोई और विश्वसनीयता की मांग करती है उपन्यासों में किसी सीमा तक उससे बचने की गुन्जाइश बनी रहती है। यहाँ कथा की ओट बनी रहती है। यौवन की बीहड़ सच्चाइयों को उपन्यास की सिलवटों में छिपते-छिपाते आसानी से दिखाया जा सकता है। आत्मकथा सच का सामना करने के लिए होने वाले पोलिग्राफिक टेस्ट की तरह होती है। जिसका सामना करने का साहस हर लेखक में नहीं होता।

यह उपन्यास दो बहनों गुलमोहर और मोगरा की कहानी के रूप में रचित है, जो दरअसल प्रकारांतर से मंजुल भगत और मृदुला गर्ग की कहानी ही बयां करती है। यहाँ मोगरा स्वयं मृदुला गर्ग हैं और गुलमोहर उनकी बड़ी बहन मंजुल भगत। जिसमें गुल की कहानी मोगरा कहती चलती है और कभी-कभी बीच-बीच में खुद गुल भी सूत्र थाम लेती है। इसलिए इसका शीर्षक 'मिलजुल मन' रखा गया है। वैसे इस उपन्यास के शीर्षक की प्रतीकात्मकता को समझाते हुए मृदुला जी एक साक्षात्कार में कहती हैं कि- "मन का अर्थ अत्यंत बहुआयामी है वह दिल भी है, मस्तिष्क भी, चेतना भी और कल्पना भी, अस्तित्व भी वही है। मन के साथ मिलकर जो काम कर सके या जो अपने मन को पहचान ले वही सही मायने में अपने अस्तित्व को पहचान सकता है। इसलिए इसका नाम 'मिलजुल मन' रखा।"[18] आगे वह उसी साक्षात्कार में इस उपन्यास के उद्देश्य को समझाते हुए बताती हैं कि " 'मिलजुल मन' उपन्यास आतंरिक जीवन में औरत और मर्द में अन्तर न करके दोनों को अभिव्यंजित करता है। साथ ही देश के नवस्वाधीन स्वरूप की व्यंजना भी उसी तरह करता है कि वह मानवीय है, किसी एक गुट, वाद या लिंग का पक्षधर नहीं।" [19] मृदुला जी को इस उपन्यास में भी स्त्री अस्मिता के पक्ष में कहने का जब-जब भी मौका मिला है, उन्होंने उसका पूरा उपयोग किया है। अपने पिता के बच्चों से लगाव की व्याख्या करते समय वे यह निष्कर्ष देने का अवसर निकाल लेती है कि "पितृत्व को मातृत्व में समा, उसे जनाना बनाना, मेरे ख्याल से पितृसत्ता की सबसे अचूक चाल रही है।"[20]

आत्मनिर्भरता को वे नारी सशक्तिकरण हेतु पहली शर्त मानती हैं। अपने इस उपन्यास में भी उन्होने आत्मनिर्भरता के महत्व को बखूबी रेखांकित किया है। उपन्यास के आरम्भ में वे एक जगह पर गुल की आत्मनिर्भरता का संकेत देते हुए कहती हैं कि - "अपना बायां हाथ कलाकार है, दायां मजदूर।"[21] इससे साफ़ परिलक्षित होता है कि वे आधी दुनिया को अपना उदाहरण प्रस्तुत करते हुए संदेश देती हैं कि वर्तमान समय में स्त्रियों में इतनी काबिलियत है कि वह बाहर और भीतर दोनों का कार्य साथ-साथ कर सकती हैं। जिस प्रकार गुल का बायां हाथ कलाकार है, यानि उसकी सृजनात्मकता तथा सौंदर्य का बोधक है तो दायां हाथ उसकी कार्यकुशलता और मजबूती का प्रतीक है। यह सौंदर्य और यह कार्यकुशलता पुरुष लाख चाहे तो भी हासिल नहीं कर सकता।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि मृदुला जी अपने उपन्यासों में समस्याओं को सिर्फ चित्रित ही नहीं करतीं वरन उसका निदान भी बताती हैं। वे अपने पात्रों को स्थितियों से संघर्ष करते हुए भौतिकता के धरातल से उठाकर तार्किक दृष्टि के साथ अपने अस्तित्व और इच्छाओं के लिए निर्णय लेते हुए दिखाती हैं। उनकी सभी स्त्री पात्र अपने जीवन का निर्णय स्वयं लेती हैं। वे किसी और के सहारे के लिए प्रतीक्षारत नहीं रहतीं। मृदुला गर्ग ने अपने उपन्यासों के माध्यम से समाज के प्रत्येक वर्ग की स्त्री के संघर्षों का चित्रण कर उसकी दशा और दिशा से पाठक वर्ग को अवगत कराया है। वे अपने उपन्यासों के माध्यम से समाज में स्त्री को वस्तु नहीं मनुष्य के रूप में प्रतिष्ठित करने को तत्पर हैं। हिन्दी कथा साहित्य में उनके उपन्यास पहली बार हीनता-ग्रंथी और

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2320-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 7.512|

||Volume 9, Issue 6, June 2020||

अपराधबोध से मुक्त एक कुंठा मुक्त स्त्री-चेतना की रचना करते हैं। मृदुला गर्ग के उपन्यासों में चित्रित स्त्री का यह स्वरूप और स्त्री चेतना का यह स्वर स्त्री विमर्श की भविष्योन्मुखी प्रस्तावना है।

निष्कर्ष

हिन्दी की सर्वाधिक लोकप्रिय कथा लेखिका गौरा पंत 'शिवानी' जन्मी भले ही गुजरात में पर उनके व्यक्तित्व में कुमाऊँ एवं बंगाल का संस्कृति का अद्भुत मिश्रण रहा है। उनकी बहुत सी कथा-कहानियों में जहाँ एक ओर कुमाऊँनी अंचल के लोक-जीवन का सुन्दर और सटीक चित्रण मौजूद है वहीं उनकी रचनाओं में तत्सम, समासयुक्त शब्दावली के साथ-साथ बांग्ला साहित्य और बांग्ला भाषा का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। इस प्रभाव के पीछे शिवानी के अपने पारिवारिक तथा वे प्रारंभिक शिक्षा संस्कार थे, जो उन्हें शांति- निकेतन आश्रम में नौ वर्षों के शिक्षाकाल में मिले।

इसी पृष्ठभूमि ने उनकी लेखनी को सशक्त और रचनाओं को संवेदनशील बना दिया है। शिवानी जी ने हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में अपने बहुआयामी व्यक्तित्व का परिचय दिया है। इन्होंने उपन्यासों के साथ-साथ कहानी, संस्मरण, रेखाचित्र, निबन्ध, रिपोर्ताज, यात्रा-वृतान्त, इतिहास एवं बाल-साहित्य की रचना कर हिन्दी-साहित्य की विपुल समृद्धि प्रदान की है। अपने साहित्य-सृजन के उद्देश्य के संबंध में शिवानी जी स्वयं कहती हैं-''मेरे साहित्य-सृजन का मुख्य उद्देश्य यह रहा है कि समाज के विभिन्न क्षेत्रों में फैली अराजकता, भ्रष्टाचार, अनाचार, कुरीतियों एवं विसंगतियों को आम जनता जाने और समझे। ऐसा साहित्य रचा जाए जो जन साधारण को भी ऊपर उठाये। साहित्य आदर्शोन्मुख एवं वास्तविक हो, जिनसे जन-समुदाय का कल्याण हो।''

शिवानी जी ने अपने कथा-साहित्य में नारी को केन्द्र बिन्दु में रखा है। शिवानी जी की एक-एक कहानी चाहे कृष्णकली, कालिन्दी, 'पूतों वाली' कोई भी हो, नारी संवेदना की मार्मिकता अन्तर्वेदना को जिस आत्मीयता एवं गहराई के साथ महसूस किया है वह अतुलनीय है। नारी संवेदना को रोचकता से गूँथने की कला-मर्मज्ञ थी-शिवानी। नारी भावों-अनुभवों के कैनवास पर नारी मन के विविध पन्नों की अन्तरंग अनुभूतियों की अद्भुत छटा अपनी लेखनी के जरिए बिखेरती है। शिवानी नारी की विभिन्न भूमिका को स्वीकार करती हुई भी उसकी एक स्वतन्त्रचेता अस्तित्व की हिमायती दिखाई देती है। उनका मानना है-''नारी को मैं रवीन्द्रनाथ के शब्दों में न केवल देवी रूप में पूजी जाना चाहती हूँ, न पूर्ण समर्पिता। उसका अपना आत्म-सम्मान अक्षुण्ण बना रहें नारी का सौष्ठव आहत न हो।'' अपने हर चरित्र में काया प्रवेश करती शिवानी उस जिन्दगी को जैसे उसी चरित्र के साथ जी लेती है। उनकी कल्पना के धागे में मोतियों से पिरोये शब्द पाठक के हृदय पटल पर गहराई से अपनी छाप छोड़ते हैं। नारी जीवन की त्रासदियों के बीच समाज निर्धारित मानदण्डों की कड़ियाँ उसके चरित्र से जोड़ती शिवानी पुरुष के साथ उसके संबंधों में एक प्राकृतिक व नैसर्गिक जरूरत को हमेशा महŸव देती हैं जिसका समावेश प्रेम के चरम बिन्दु के रूप में होता है। स्त्री-पुरुष के संबंधों में प्रेम के महŸव को वे कभी स्वार्थ से नहीं जोड़ती। उनकी नायिकाएँ प्रेम का उच्च आदर्श उपस्थित करती है। शिवानी स्मृति विशेषांक में डाॅ. अमीता श्रीवास्तव लिखती हैं-''शिवानी हिन्दी की उन बड़ी कथाकारों में से हैं जिन्होंने अपने पात्रों को बड़ी ममता और संवेदना से रचा है और उन्हें करूणा का ऐसा अक्षय कोष सौंप दिया है कि वे हमें बार-बार मानवीय करूणा और विडम्बना की डबडबाई आँख के आगे ला खड़ा करते हैं। उनके पात्र अपनी संवेदना की अजस्र धारा में बहा ले जाते हैं कि उनका कोई भी उपन्यास एक बार शुरू कर देने के बीच में कहीं छोड़ देना असंभव है। हम मानों करूण नियति झेल रहे उनके पात्रों के साथ-साथ ही थपेड़े खाते हुए कथा के अंत तक पहुँचने के लिए विकल हो उठते हैं। यही शिवानी के कथा-साहित्य का जादुई सम्मोहन है, जो पाठकों की विभिन्न संवेदनाओं के द्वारा इस कदर बाँध लेता है कि शिवानी के उपन्यास पढ़ लेने के बाद बार-बार उनके अन्य उपन्यास तलाशने में जुट जाते हैं।'' शिवानी जी को स्त्री जीवन की गहरी समझ है जो कुछ अधूरा छूटा रह गया उसे भी लेखिका ने अपनी वैचारिक चेतना के जरिए तलाशा और उनकी ये तलाश एक मुकम्मल सोच के रूप में उनकी रचनाओं में दर्ज होती चली गयी।

स्त्री अस्मिता की तलाश

नारी संवेदना की चितेरी लेखिका शिवानी स्त्री-जीवन का अद्भुत रूप अपनी कलम की जादूगरी से बिखेरती चलती है। शिवानी जी ने नारी-चित्रण में भाभियाँ, बहनें, बेटियाँ सभी को केन्द्र में रखा है। स्त्री जीवन में प्रेम के महŸव को वह बखूबी समझती है और सबसे बड़ी बात यह है कि उसे वैवाहिक बंधनों से मुक्त रखकर उसकी नैसर्गिक प्रकृति पर नाटकीयता का मुलम्मा नहीं चढ़ाती। उनकी कथावस्तु यथार्थ की चेतना पर आधारित है। शिवानी ने नारी के कमजोर पक्ष का विश्लेषण कर उसकी मार्मिक वेदना में करूणा का मिश्रण तो करती है किन्तु पुरुष

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2320-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 7.512|

||Volume 9, Issue 6, June 2020||

के नाम पर तीव्र घृणा का संचार कर दोनों के बीच गहरी खाई का निर्माण वो नहीं करती। वह बेहद संतुलित ढंग से नर-नारी के संबंधों में सुधार की हिमायती है। पर जहाँ उद्वेग तीव्र हो वहाँ स्त्री का उग्र रूप भी सामने जरूर आता है। नारी-मन के हर रंग से चिर परिचित शिवानी हर क्षण अपने चरित्रों के साथ बोलती-बतियाती दिखायी देती है। वे अपनी कथाओं के माध्यम से स्त्री की उन विशेषताओं को रेखांकित कर, विश्लेषित देती हैं जिन्हें आम आदमी नहीं देख पाता। 'केया' कहानी का एक उदाहरण द्दष्टव्य है, ''सामान्य-सा परिचय भी एकांत के साहचर्य में दो स्त्रियों को ऐसे घुल-मिला देता है, जैसे वे वर्षों की पूर्वपरिचित हों। अपने हृदय के अन्तरतम कक्ष की कुंजी फिर दूसरी को थमाने में नारी नहीं हिचकती, ऐसा निष्कपट आत्म-निवेदन, कभी किसी पुरुष के लिए सम्भव नहीं होता। पुरुष क्या स्वभाव से ही सजग शंकालु नहीं होता? गहन मैत्री या पतिव्रता पत्नी का एकनिष्ठ प्रेम भी क्या उसे पूर्ण रूप से कभी आश्वस्त कर सका है? जहाँ प्रिय वाक्य प्रदानमात्र से ही किसी नारी का विश्वास प्राप्त किया जा सकता है, वहाँ पुरुष-हृदय की गहराई सहज में ही नहीं नापी जा सकती। नारी के इसी स्वभाव-दौर्बल्य का तो संसार आए दिन लाभ उठाता है।'' उनके कथा-साहित्य के स्त्री पात्र स्त्री-जीवन की विराट झाँकी प्रस्तुत करते हैं। शिवानी जी ने 'शिबी', 'दर्पण', 'लाल हवेली', 'अपराधी कौन', 'विप्रलब्धा', 'दो स्मृति चिह्न', 'चिर स्वयंवरा', 'करिए छिमा', 'मधुयामिनी', 'केया', 'भिक्षुणी' आदि कहानियों के माध्यम से नारी-मन के हर कोने व झरोखे में झाँकने की एक सफल कोशिश की है। शिवानी जी को स्त्री जीवन की गहरी समझ है जो कुछ अधूरा छूटा रह गया उसे भी लेखिका ने अपनी वैचारिक चेतना के जरिए तलाशा और उनकी ये तलाश एक मुकम्मल सोच के रूप में उनकी रचनाओं में दर्ज होती चली गयी। और भाषा ऐसी कि बस आप मंत्रमुग्ध हो बार-बार उसकी तरफ किसी तरह खिंचते चले जाते हैं। शिवानी जी की लेखनी से हिन्दी के पाठक वर्ग सुपरिचित हैं। उनके कहानी-उपन्यासों ने समाज के जीते-जागते पात्रों को उठाकर उन्हें अमर कर दिया है। शिवानी ने कृष्णकली, सुरगंमा, और किशुनली की 'ढांढ' आदि उपन्यास में कुछ ऐसे पात्रों को उभारा है जो पाठकों की नजर में अनायास ही चढ़ जाते हैं और कथा समाप्त होने पर हमारे चित पर अमिट छाप छोड़ जाते हैं। शिवानी जी जहाँ पात्रों को कृत्रिम ढंग से भला बनाने और हृदय-परिवर्तन करने का प्रयास न करके उसे उसके अकृत्रिम और यथार्थरूप में पेश करती हैं, वही उनका चरित्र चित्रण अधिक सुन्दर बन पड़ता है। उनकी चरित्र-सृष्टि यथार्थवादी है। इनके पात्र हमारे आस-पास के जीते-जागते पहचाने जाने वाले पात्र हैं। इनके आदर्श पात्रों में भी मानवोचित दुर्बलताएँ दिखाई देती है और बुरे-से-बुरे पात्रों में भी अपनी सद्प्रवृŸिायों के आयाम अनुभव करते हैं। आन्तरिक संघर्ष एवं द्वन्द्व प्रायः सभी पात्रों में पाया जाता है। इतना ही नहीं पात्रों के चित्रण को चित्रोपम रूप प्रदान करने में शिवानी सिद्धहस्त हैं। बारीक-से-बारीक रेखाओं की मांसलता और वर्णन की सूक्षमता से प्रत्येक चरित्र प्राणवान बन उठता है और वह सहज ही नहीं भुलाया जा सकता। किशुनली, अनसूइया, हीरावती आदि ऐसे चरित्र है जो पाठक की संवेदना से जुड़कर उसकी स्मृतियों में बस जाते हैं। शिवानी ने अपने पात्रों के माध्यम से नर-नारी को भीतर से जानने की कोशिश की है।

शिवानी ने कथा-साहित्य में सामाजिक समस्याओं जैसे-दाम्पत्य जीवन, पे्रम समस्या, रखेलप्रथा, वेश्या जीवन, अवैध मातृत्व, वैवाहिक समस्याओं-दहेज प्रथा, बेमेल विवाह, बाल-विवाह, विधवा समस्या, वृद्ध समस्या आदि को वण्र्य विषय बनाया है जो द्दष्टव्य है। वर्तमान में पनपने वाली गंभीर समस्या वृद्ध समस्या है। आधुनिक जमाने में वृद्धों को भार समझा जाता है। नयी पीढ़ी पढ़-लिखकर, अपनी नौकरी से जुड़ने के कारण घर-परिवार से असंपृक्त होने लगी है। विवाह होते ही माँ-बाप को छोड़कर चले जाना आम बात हो गई है। बेटों के होते भी माता-पिता को बेघर, वृद्धाश्रम में जीवन जीना होता है। शिवानी जी की 'दो सखियाँ' कहानी इस समस्या को गहराई से पूरी संवेदना के साथ रेखांकित करती है। ये कहानी वृद्धाश्रम में जीवन बिता रही विभिन्न महिलाओं के जीवन को केन्द्र बनाकर लिखी गई है। सखुबाई, आनंदी, गुरुविंदर कौर सभी पात्रों की अपनी एक अलग कहानी है, जो समाज से तिरस्कृत होकर वृद्धाश्रम में जीवन बीता रहे थे। एक बेटे और दो बेटियों की माँ होते हुए भी आनंदी जैसी वृद्ध महिला को वृद्धाश्रम में रहने को मजबूर होना पड़ता है। ''सखुबाई को लगता, उसके पुत्र से भी अधिक जघन्य अपराध आनंदी की संतान ने किया था। ऐसी संत निरीह जननी को कैसे यहाँ एकदम अनजान परिवेश में ढकेल दिया। चार वर्षों में कुल दो बार उसकी बेटियाँ उससे मिलने आयी थीं-अलबŸाा चिट्ठियाँ और नववर्ष के कार्ड आ जाते। होली के दिन पŸाा भी हिलता तो आनंदी चैकन्नी हो जाती। उस दिन 'आश्रम' के कई भाग्यशाली बुजुर्गों के आत्मीय स्वजन उन्हें अबीर-गुलाल का टीका लगाने आते। आनंदी की बेटियाँ तीन होलियों से माँ से मिलने नहीं आयी थी। फिर भी कहीं-न-कहीं आशा की टिमटिमाती ज्योति को आनंदी हथेली की ओट से बचाए सेंत रही थी।'' ऐसे में वृद्ध आनंदी की मौत होने पर जब आनंदी की पुत्रियों को खबर दी गई, उस समय वे दोनों परिवार सहित बैंकाक घूमने गई थी। 'हमारी माँ का बक्सा सँभालकर रख दें-हम लौटने पर ले लेंगी।' ''एक सुखबाई ही जानती थी उस सूटकेस में क्या है-चार सूती इकलाई धोतियाँ, तीन पेटीकोट, चार कुर्तियाँ, दो चादर, एक टूटा चश्मा, वर्षों से बंद पड़ी एक अलार्म घड़ी और बैंक की पासबुक, जिसमें कुल जमा थे सŸााइस रुपये बावन

पैसे!...... यह उस बेटे की माँ की विरासत थी जिसे महीने में बीस हजार का वेतन मिलता था, जिसका अपना अपार्टमेंट था, स्विमिंग पूल था, तीन-तीन गाड़ियाँ थी। उन दामादों की सास की विरासत थी जिनके घरों में कुबेर का छत्र बड़ी गहराई तक धँसा था।'' ऐसे वृद्धजनों के प्रति शिवानी जी में अपार संवेदना दिखाई देती है। आज की युवा पीढ़ी उनकी देखभाल से उदासीन होती जा रही है बल्कि पूर्णतः विमुख हो चुकी है। शिवानी की कहानी 'भूमि-सुता' में अनुराधा की अपने बेटे रजत की उदासीनता के कारण स्मृतिभ्रष्ट तक हो जाती है। रजत अपने पिता की मौत की खबर सुनकर भी नहीं आता। ओर एक दिन जब रजत आता है तो घर का सारा सामान औने-पौने दामों में बेच जाता है। बीमार माँ अनुराधा को देखभाल के लिए आपने साथ ले जाने की बजाय कलकŸो के चैशायर ओल्ड होम में छोड़ आने का प्रस्ताव रखता है। निराश्रित होने का आतंक अनुराधा की निरीह आँखों में सदा के लिए जम गया था-कहाँ जाएगी वह? कभी कमरे में लावारिस लाश-सी पड़ी रहीं तो? कौन देगा उसे मुखाग्नि? यह सोच-सोच कर भंयकर बिमार हो गयी। उनकी दŸाक पुत्री सुता जब माँ की इस स्थिति को देखती है। ''सुता जानती थी उस बीमारी का कारण क्या है। विदेशों में सन्तानों की उदासीनता से पीडित, निष्कासित, ओल्ड होम में डाल दिए गए बूढ़े माँ-बाप, क्या वह हाइडपार्क की बेचों पर स्वयं शून्याकाश को निहारते नहीं देख चुकी है? सन्तानप्रदत वे ही अकृतज्ञ आघात उन्हें धीरे-धीरे विस्मृति के गर्भ में डूबों देते हैं। एड्स की भाँति, अब यह बीमारी भी भारत में रेंग आई है। रजत और उसकी पत्नी के दिए गए अदृश्य आघातों के नासूर क्या एक आध थे?'' इन पंक्तियों में शिवानी की कलम वृद्धजनों की होती दुर्दशा और संबंधों में बँटती गर्माहट को भी रेखांकित करती है।

शिवानी अपने कथा-कहानियों में देहज जैसी सामाजिक बुराई और उसके दुष्प्रभाव पर भी प्रकाश डालती है। वो अपनी अनेक कहानियों और उपन्यास में दहेज लोलुप व्यक्तियों का चित्रण करती ही है, साथ ही ये भी बताती है कि दहेज के अभाव में या दहेज कम दिए जाने के मामले में कितनी मासूम लड़कियों को अपनी जान तक खोनी पड़ती है। दहेज के कारण ही समाज में बेमेल और बाल विवाह जैसी समस्याएँ पैदा होती है। समाज में दहेज का ये अभिशाप आज ओर भी गहराता जा रहा है। 'श्राप' कहानी के एक प्रसंग में लड़की के पिता शिवानी जी को कहते हैं, ''हम लोगों के लिए अच्छे लड़कों के लिए अच्छी-खासी रकम देनी पड़ती है। दुर्भाग्य से हम कान्यकुब्ज ब्राह्मण हैं, हमारे यहाँ एक प्रकार से रटे बँधे हैं, आई.ए.एस. लड़का है तो सवा लाख, आई.पी.एस. तो एक लाख, इंजीनियर है तो अस्सी हजार और फिर साधारण नौकरीवालें के लिए भी कम-से-कम बीस हजार, उस पर दहेज अलग, डॉक्टर लड़के तो कन्धे पर हाथ नहीं धरने देते। यानी जैसा दाम खर्च कर सको वैसी चीज लो।' ''तो आपको इस रिश्ते में भी रकम भरनी होगी?'' मैंने पूछा। ''और नही तो क्या? पर ये शरीफ हैं, इन्हें लड़की पसन्द है, कुछ नहीं माँगेंगे, हम अपनी बिटिया को जो देना चाहें दे।' बड़े गर्वजन्य संतोष से उनका शान्त चेहरा दमक उठा। बेचारे शायद इस कटु सत्य से अनभिज्ञ थे कि मुँह से कुछ न माँगनेवाले ही कभी-कभी मुँह खोलकर सब कुछ माँगनेवालों से भी खतरनाक होते हैं। शिवानी जी के इस कथन की अन्तिम बात में निर्मम सच्चाई थी। कहानी के अगले ही हिस्से में समधियों का लालच सामने आ जाता है। लड़की के पिता एक पल को चुप रहे फिर रूंधे गले से बोले, ''कैसे विचित्र लोग हैं, पहले स्वयं कहा कि कुछ नहीं लेंगे, केवल कन्या के हाथ पीले कर, उन्हें सौंप दें। अब चलते-चलते पैंतरा बदल लिया। मुँह खोलकर कहते तो हम उनकी वह माँग भी पूरी कर देते। अब दिव्या की चिन्ता लगी रहेगी-बहुत भोली है।'' ''आप चिन्ता न करें, सब ठीक हो जाएगा, ऐसी सुन्दर लड़की है आपकी, गुण-रूप देखकर अपनी सब माँगे भूल जाऐंगे।'' अब कभी-कभी सोचती हूँ, नारी होकर भी मैं उन्हें एक नारी के प्रति हो रहे अन्याय का विरोध करने को क्यों नहीं उकसा पाई। क्यों नहीं कह सकी कि जो सगाई में ऐसे नीच लोलुप स्वभाव का परिचय दे गया, उसे क्यों अपनी कन्या सौंप रहे हैं आप? अभी क्या बिगड़ा है, तोड़ दिजिए यह सगाई।'' विवाह हुआ और बड़ी धूमधाम से हुआ....''विवाह के चार ही महीने बाद गैस पर खाना बनाते हुए, आँचल में आग लगी-मिनटों में ही झुलस गई, दूसरे ही दिन खतम हो गई।'' किन्तु वास्तविकता ये थी कि जली नहीं, जला दी गई थी। कहानी में त्रासदीपूर्ण ढंग से एक मासूम की मृत्यु का कारण बना समाज में फैला दहेज। खबर पाते ही उसकी माँ ने बेटी से पूछा, 'कैसे हुआ यह?' बोली-'अम्मा हुआ नहीं, किया गया।' बस, आँखे पलट दी। ''वहाँ उस बयान का कोई साक्षी नहीं था, न नर्स, न डॉक्टर-हाँ, एक साक्षी थी, स्वयं सगी बहन, वह मुकर गयी। ''मैंने चीख-चीखकर कहा, 'मेरी बेटी जली नहीं, उसे जलाया गया है, मुझसे स्वयं कह रही है।' 'पर मेरी ही सगी बहन ने मेरा मुँह दाब दिया, 'क्या कह रही हो जीजी! दिव्या खाना बनाने में जली है, उसे किसी ने नहीं जलाया।' ''तू झूठी है, तेरे पति भी पुलिस के अफसर हैं और दिव्या का जेठ भी, तुम्हारी बिरादरी हमेशा अपने पेशेवर को ही बचाती है। तूने ही यह रिश्ता इन कसाईयों से पक्का किया था।' पर मेरी सगी बहन ही मुझसे नाराज होकर घर चली गई-तब से दर-दर भटक रही हूँ। कही तो न्याय की भीख मिलेगी। हत्यारा अभी भी मूँछों पर ताव देता घूम रहा है, सुना है दूसरी जगह रिश्ते की बात चल रही है।'' इस कहानी में कितनी मार्मिकता से शिवानी जी ने दहेज के

दुष्प्रभावों को दिखाया है। शिवानी जी ने दहेज जैसी गंभीर समस्या को अपने ‘कालिन्दी’, ‘चल खुसरो घर आपने’, ‘तिलपात्र’ आदि उपन्यासों में भी उठाया है।

दहेज समस्या के अतिरिक्त शिवानी जी ने वेश्या समस्या पर बहुत कुछ लिखा है। किन मजबूरियों से स्त्रियाँ या लड़कियाँ वेश्या बनती है, उनके प्रति समाज का दृष्टिकोण, समाज में उनका स्थान आदि का वर्णन शिवानी जी ने किया है। वेश्या जीवन का चित्रण और उनके प्रति संवेदना का चित्रण प्रेमचन्द युग से आज तक होता आया है। शिवानी जी भी इससे अछूती नहीं रहीं। शिवानी का नाम उन सर्जकों में विशेष रूप से उल्लेखनीय है जिन्होंने वेश्या-जीवन जीने के वाली स्त्री के उद्धार के लिए अपने कथा-साहित्य के माध्यम से सराहनीय कार्य किया है। शिवानी जी मानती है कि नारी का यह रूप मूलतः आर्थिक विवशता का परिणाम होता है। यह विवशता कहीं जन्म से ही उसे वेश्या-कुल से जोड़ देती है। शिवानी के कथा-साहित्य में ऐसी स्त्रियाँ दो वर्गों में विभाजित की जा सकती है। प्रथम वर्ग में उन नारियों का गर्हित रूप है, जो साधारण समाज का कंलक समझी जाती है। पुरुष की वासनापूर्ति से अपने आर्थिक अभाव की पूर्ति करना ही जिनका प्रमुख उद्देश्य रहता है। अपने भविष्य के असुरक्षा के भाव के कारण अधिकाधिक धनार्जन को अपना लक्ष्य बनाती है। दूसरे वर्ग में ‘देवियाँ’ आती है, जो अपने रूप, गुण और शील में किसी ललना से कम नहीं। इनका स्नेह, त्याग अभिजात्यवर्गीय नारी के समकक्ष रहकर भी इनकी नियति वेश्या होकर ही रहने की है। ‘कृष्णकली’ की पन्ना, ‘करिये छमा’ हीरावती ऐसी ही त्यागमयी श्रेष्ठ नारियाँ है। शिवानी जी का मानना था कि वेश्या घृणा के योग्य नहीं है, वह भी मानवी है, उनमें भी स्त्रीत्व की भावना है तथा वह प्रेम और विश्वास की भावना पाकर अन्य नारियों की भाँति जीवन व्यतीत कर सकती है। शिवानी जी ने अपने उपन्यास और कहानियों दोनों के माध्यम से वेश्याओं के जीवन की विडम्बनाओं, उनकी परिस्थिति की विवशताओं तथा उनके मन की पवित्रताओं पर विस्तृत प्रकाश डाला है। वेश्या जीवन की तरह वैधव्य जीवन, नारी जीवन की बेहद कारूणिक स्थिति होती है। नारी जब विधवा बन जाती है तो उसका जीवन समाज में नर्क से भी बदतर बन जाता है। वह समाज-परिवार के अनेक नए नियमों से जकड़ दी जाती है। वह न अच्छे वस्त्र धारण कर सकती है, न हँस-बोलकर जीवन बीता सकती है, न किसी पर्व-त्योहार, शादी-विवाह में भाग ले सकती है। समाज द्वारा उपेक्षित जीवन स्वयं उसके लिए भी भार-स्वरूप् बन जाता हैै। सदियों से ऐसी भाग्यहीन विधवाएँ जीवन जीती रही है। शिवानी ने अपनी कहानियों-उपन्यासों में विधवाओं के अन्तर्मन में उठने वाली इच्छाओं, भावों का चित्रण अनेक सन्दर्भों के अन्तर्गत करती है। वे मानती है विधवा होना कोई पाप नहीं है कि जिसका भार एक स्त्री हमेशा अपने साथ ढोए। शिवानी ने अपने ढंग से समाज के इस दूषण को मिटाने और विधवाओं को समाज में सम्मानपूर्वक जीवन व्यतीत करने के लिए प्रयत्न किया है। शिवानी अपनी कथाओं में विधवाओं की करूणता का चित्रण तो करती है परन्तु विधवाओं को विवश, परवश या शोषण की शिकार न बना उन्हें शिक्षित कर, आत्मनिर्भर बनाती है ताकि वो पूरे मान-सम्मान के साथ समाज में जीने के लिए तैयार हो। पुनर्विवाह की सामाजिक स्वीकृति की अपेक्षा विधवाओं को शिक्षित और आत्मनिर्भर बनाकर गौरवपूर्ण जीवन के लिए प्रेरित करना श्रेयस्कर है। यह कार्य शिवानी जी पूरे आत्मबल से करने का प्रयत्न करती है।

शिवानी जी सामाजिक समस्या से इतर धार्मिक समस्या को भी पूरी गहराई और मार्मिकता से अपने कथा-संसार में चित्रित करती है। शिवानी जी धर्म का आडम्बर लेकर भोली-भाली जनता को बेवकूफ बनाते अघोरी साधक, धार्मिक संतों, नंगा बाबाओं आदि का वास्तविक रूप सामने रखा है। शिवानी जी की ‘निर्वाण’ कहानी धार्मिक आडम्बर और धर्म के नाम पर लोगों के जीवन को नष्ट करने वाले एक ऐसे ही चमत्कारी बाबा का चित्रण है। कहानी की पात्र मन्नू यानि मनोरमा चोपड़ा बहुत ही धार्मिक स्वभाव की महिला है और उसे अपने चमत्कारी बाबा जो उसके गुरु भी है, उन पर अटूट विश्वास है। एक दिन मन्नू लेखिका को गुरु के लिए घर पर आयोजित धार्मिक आयोजन पर आमंत्रित करती है। लेखिका मन्नू के घर पर पहुँचती है। तब उसके घर का दृश्य लेखिका कुछ इस तरह वर्णन करती है, ‘‘बरसाती से लेकर बाहर तक रंग-बिरंगी कारों की कतारें देखकर ठिठकर खड़ी रह गयी। पहले मैं समझ नहीं पाई, पर कमरे में पैर रखते ही सब स्पष्ट हो गया। जहाँ दीवान, सोफा, रेश्मी गद्दियों, रा सिल्क के पर्दों के बीच अपूर्व नग्न मूर्तियों का जमघट रहता था वहाँ सबकुछ तिरोहित हो, फर्श पर दूधियाँ चाँदनी बिछी थी। एक ओर था छोटा-सा कुशासन और बीच में धरी उसके गुरुदेव की बड़ी-सी तस्वीर के सामने अगरबŸिायों के गुच्छे का गुच्छा जलता पूरे कमरे को अपनी लच्छेदार धूम्ररेखा से सुवासित कर रहा था। कमरे में तिल धरने की भी जगह नहीं थी। एक-से-एक समृद्ध अतिथि, सहमी मुद्रा में नतमस्तक बैठे, गुरुदेव की प्रतीक्षा कर रहे थे। सहसा गुरु का पदार्पण हुआ। स्कंध स्पर्श करते रेशमी घुँघराले बाल, स्थूलकाय प्रसन्नवदन उस दिव्यपुरुष को देखते ही जैसे सबको एकसाथ बिजली का-सा झटका लगा और सब खड़े हो गए।..... कमरे की भीड़ को आतुरता की लहर चंचल कर गई। आधुनिक जीवन के अनेक संशयों से क्षुब्ध कितने ही व्याकुल चिŸा, एकसाथ अनेक प्रश्न को लालायित हो और निकट खिसक आए।’’ कहानी के अनन्तर लेखिका महसूस करती है कि मन्नू बाबा की अंधश्रद्धा के चलते

धीरे-धीरे परिवार से कटती चली गई। आए दिन उनके साथ धार्मिक गोष्ठियों में भाग लेने, देश-विदेश की खाक छानती मन्नू पति, पुत्र, पुत्री सबको भुला बैठी थी। ओर एक दिन मन्नू परिवार का त्यागकर, सब-कुछ छोड़ उस बाबा के साथ चली जाती है। महीनों उसकी कोई खबर नहीं मिलती। फिर एक दिन लेखिका ने देखा 'एकसाथ ही देश के प्रमुख समाचार-पत्रों ने उसके गुरुदेव की धज्जियाँ उड़ाकर रख दीं। उसकी तस्करी की कहानियाँ, भोली-भाली युवतियों को ही नहीं, अनेक सुशिक्षिता आधुनिकओं को भी अपने सम्मोहन-पाश में बाँधने का रंगीन विवरण, कई विदेशी चेले-चपाटों की लूटपाट, उन्हें पथ का भिखारी बना देने का लेखा पढ़कर भी मुझे सबकुछ अधूरा-सा ही लगा था, क्योंकि उनकी जिस शिष्या ने, उन्हें दीक्षा की सबसे गहरी दक्षिणा दी थी, उस अभागिनी का नाम मुझे कहीं ढूँढने पर भी नहीं मिला।' और इसी सस्पेंस के साथ कहानी का अंत हो जाता है। प्रस्तुत कहानी संकेत रूप से धर्म के नाम पर खिलवाड़ करने वाले बाबाओं और उन पर अगाध अंधश्रद्धा से अपने जीवन को नष्ट करने वाली युवतियों पर तीखा प्रहार करती है। शिवानी जी ने कहानियों के अलावा 'सुरंगमा', 'चैदहे फेरे' आदि उपन्यासों में भी पाखण्डी साधु-सन्तों की प्रवृŸिायों को दिखाकर उन पर चोट तो करती ही है, साथ ही वे धार्मिक आडम्बर, अन्धविश्वास, ईश्वर को दी जाने वाली बलि, जादू-टोना, चमत्कार, निर्वाण प्राप्ति हेतु की जाने वाली श्मशान पूजा एवं साधना, धार्मिक छूआछूत आदि गंभीर समस्याओं को भी दिखाती है।[34]

संदर्भ

1. उत्तरा, महिला पत्रिका, 2004
2. वही, वही
3. डा. राजे, सुमन, हिन्दी साहित्य का आधा इतिहास
4. वही

5. प्रभा खेतान, स्त्री उपेक्षिता, (भूमिका भाग से) हिंदी पॉकेट बुक्स, 2008, नई दिल्ली।
6. रेखा कास्तकार, स्त्री चिंतन की चुनौतियाँ, पृ.. 25 राजकमल प्रकाशन, 2006, नई दिल्ली।
7. प्रभा खेतान, स्त्री उपेक्षिता, 1992, (भूमिका भाग से) हिंदी पॉकेट बुक्स , 2008, नई दिल्ली।
8. मृणाल पाण्डेय, स्त्री देह की राजनीती से देश की राजनीती, पृ. 14, राधाकृष्ण प्रकाशन, 2008, नई दिल्ली।
9. डॉ.शैल रस्तोगी; हिंदी उपन्यासों में नारी, पृष्ट-13, वि. भू. प्रकाशन, 1977, साहिबाबाद।
10. वैशाली श्रीवास्तव, स्त्री सशक्तिकरण के मायने, भारतीय समाज के सन्दर्भ में, त्रैमासिक पत्रिका, पृ.161
11. मृदुला गर्ग, 2012, मेरे साक्षात्कार पृ. 93, किताब घर प्रकाशन, दिल्ली।
12. मृदुला गर्ग, 2002, उसके हिस्से की धूप, पृ. 44, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।
13. डॉ शीलप्रभा वर्मा, महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में बदलते सामजिक सन्दर्भ, पृ. 14. दर्शन पाण्डेय, नारी अस्मिता की परख, पृ.2, संजय प्रकाशन, 2004, नई दिल्ली
15. योगेश गुप्त, नारी का रचना संसार, आजकल पत्रिका -दिसम्बर 1977 ,पृ-35
16. डॉ ज्योतिष जोगी, लेख बीते दो दशकों और हिंदी उपन्यास की यात्रा, नया मापदंड, अक्तूबर- दिसम्बर पृ.१२, 1999।
17. मृदुला गर्ग, 2013, चितकोबरा, पृ.96, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
18. मृदुला गर्ग, 2013, चितकोबरा, 177, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
19. मृदुला गर्ग, 2001, मैं और मैं, पृ. 213, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
20. मृदुला गर्ग, 2012, कठगुलाब, पृ.20, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली।
21. डॉ. रमा नवले, मृदुला गर्ग के कथासाहित्य में नारी, पृ. 77, विकाश प्रकाशन, कानपुर।
22. मृदुला गर्ग, 2012, मेरे साक्षात्कार पृ.110, किताबघर प्रकाशन, दिल्ली।
23. मृदुला गर्ग, 2012, कठगुलाब, वही. पृ.105, ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली।
24. मृदुला गर्ग; 2009, मिलजुल मन, पृ.53, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
25. मृदुला गर्ग, 2009, मिलजुल गर्ग, पृ.21, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
26. कुषवाहा अमित कुमार, हिन्दी साहित्य में स्त्री अस्मिता-नये प्रश्न नई चुनौतियां, महात्मा गंाधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी, पृ. 22
27. आइसेंक एच.जे., द एनसाइक्लोपीडिया ऑफ फिलोसॉफी, पृ. 385
28. सोलंकी डाॅ. गीता, नारी चेतना और कृष्णा सोबती के उपन्यास, पृ. 14

29. सोबती कृष्णा, नारी मुक्ति और नारी मुक्ति आंदोलन, पृ. 29
30. कुमार जैनेन्द्र, नारी, पृ. 44
31. अग्रवाल साधना, वर्तमान हिन्दी महिला कथा लेखन और दाम्पत्य जीवन, भूमिका
32. चतुर्वेदी जगदीश्वर, स्त्रीवादी साहित्य विमर्श, पृ. 07
33. नागर सूर्यकांत, नारी अस्मिता सुलगते सवाल, पृ. 39
34. पंडित सुरेश, मानव अस्तित्व के लिए लड़ती महिलाएं, पृ. 89